पारंपरिक चिकित्सा में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य

खण्ड १

परंपरागत चिकित्सा में मातृ एवं शिशु परिचर्या

भाग-१

वैद्य एम. राधिका

एवं

ए.वी. बालसुब्रमणियन्

—: हिंदी रूपांतर :—

पं. माधवाचार्य

एवं

डा. नरेंद्र नाथ मेहरोत्रा

—: कला :—

श्री संदीप सेन एवं अली कौसर

Jeevaniya Naturals

लोस्वापसंस महानिबंध संख्या ३

जनवरी १९९४

लोस्वापसंस महानिबंध संख्या ३

परंपरागत चिकित्सा में मातृ एवं शिशु परिचर्या : भाग १

प्रकाशन तिथि : जनवरी, १९९४

मूल्य : रु. ४५/- (लोस्वापसंस व जीवनीय सोसायटी के सदस्यों के लिए रु. ४०/-)

प्रतियां प्राप्त करने के लिए वांछित धनराशि का भुगतान (धनादेश या डिमांड ड्राफ्ट के रूप में हो तो बेहतर) 'जीवनीय सोसायटी, लखनऊ' के नाम से निम्न पते पर भेजें।

जीवनीय

ई-III/२४९, सेक्टर-एच

अलीगंज, लखनऊ-२२६०२०

बाहर से भेजे जाने वाले चेकों में रु. १०/- मात्र, बैंक शुल्क अतिरिक्त भेजें। रजिस्टर्ड डाक द्वारा पुस्तक प्राप्त करने के लिए रु. १०/- अतिरिक्त भेजें।

कापार्ट (काउंसिल फार एडवांसमेन्ट आफ पीपुल्स ऐक्शन ऐण्ड रूरल टेक्नालाजी की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

प्रकाश पैकेजर्स, २५७ गोलागंज, लखनऊ द्वारा मुद्रित।

अनुक्रमणिका

	प्राक्कथन	i)
	दो शब्द	ii)
	लोस्वापसंस	iii)
	जीवनीय सोसायटी	v)
अध्याय १	प्रस्तावना	१
अध्याय २	गर्भधारण	४
अध्याय ३	गर्भावस्था की पहचान	९
अध्याय ४	गर्भिणी परिचर्या : गर्भवती की देखभाल	१७
अध्याय ५	गर्भिणी व्याधियां एवं चिकित्सा	३०
अध्याय ६	गर्भस्राव और गर्भपात	४१
अध्याय ७	गर्भज विकृतियां और उपसंहार	४७
परिशिष्ट १	परिभाषिक शब्द संग्रह	५१
परिशिष्ट २	मां एवं शिशु के स्वास्थ्य से संबंधित प्रथाओं का लोस्वापसंस सर्वेक्षण	५३
परिशिष्ट ३	मूल्यांकन में सम्मिलित आचार्य और सर्वेक्षण में सम्मिलित संस्थाएं	६८
	संदर्भ	७१

प्राक्कथन

मां एवं शिशु के स्वास्थ्य का क्षेत्र विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इस क्षेत्र में दाइयों के रूप में परंपरागत स्वास्थ्यकर्मी विशेषज्ञों का एक विशालतम निकाय आज भी देश में विद्यमान है। यह क्षेत्र इस दृष्टि से भी अनूठा है कि इस क्षेत्र में शासन ने भी परंपरागत स्थानीय स्वास्थ्य कर्मियों (दाइयों) के अस्तित्व को मान्यता दी है। आज 'दाई प्रशिक्षण' मां और बच्चे की देखभाल के सरकारी कार्यक्रमों का एक महत्वपूर्ण भाग है। यद्यपि इस कार्यक्रम में और भी कई खामियां हैं, सबसे महत्वपूर्ण कमी है सरकारी कार्यक्रमों में दाईयों के परंपरागत ज्ञान एवं कौशल को पूरी तरह नकार कर उन्हें आधुनिक चिकित्सकों का पिछलग्गू बना देना। सन् १९८८-८९ में लोस्वापसंस ने चेतना की सहभागिता से देश के विभिन्न भागों में मां और शिशु के स्वास्थ्य से संबंधित प्रचलित परंपराओं के विस्तृत सर्वेक्षण का कार्य हाथ में लिया था। इस सर्वेक्षण के आंकड़ों का मूल्यांकन आयुर्वेद के दृष्टिकोण से सुविज्ञ आचार्यों द्वारा कराया गया था। तदनंतर नई दिल्ली में दिसंबर १९८९ में संपन्न एक राष्ट्रीय अधिवेशन में इन जांच-परिणामों को सामुदायिक स्वास्थ्य कर्मियों, आधुनिक चिकित्सकों आदि के समक्ष प्रस्तुत कर उसका विवेचन किया गया था।

प्रस्तुत प्रकाशन में हमने मां एवं बच्चे के देखभाल की परम्पराओं का सिंहावलोकन करने का प्रयास किया है, जिसमें आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से कतिपय परंपरागत प्रथाओं का आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से आंकलन प्रस्तुत किया गया है। यह महानिबंध मुख्यतः क्षेत्रीय सर्वेक्षण के परिणामों तथा दिल्ली सम्मेलन के अधिवेशन में प्रस्तुत किए गए तथ्यों का संकलन है। चूंकि यह विषय अत्यंत विस्तृत है अतः हमने प्रस्तुत महानिबंध के प्रथम भाग में अपने को गर्भिणी परिचर्या अर्थात् गर्भवती स्त्री की देखभाल तक ही सीमित रखा है। प्रसव तथा मां एवं शिशु की प्रसवोत्तर देखभाल पर इसके द्वितीय भाग में विस्तृत विचार किया जायगा।

प्रस्तुत महानिबंध की रूपरेखा तैयार करने में प्रो. अशोक झुनझुनवाला (आइ.आइ.टी., मद्रास) को सहयोग के लिए तथा पाण्डुलिपि आलेखों को टंकणित करने और प्रेस-कापी तैयार करने के लिए हम कु. आर. रमा के आभारी हैं। इन सबसे अधिक हम उन स्वयंसेवी संस्थाओं तथा आचार्यों के आभारी हैं जिन्होंने सर्वेक्षण तथा आंकड़ों के मूल्यांकन का कार्य संपन्न किया है।

मद्रास
जुलाई, १९९०

ए.वी. बालसुब्रमणियन्
संपादक

दो शब्द

स्वास्थ्य की स्थानीय परंपराओं में मातृ एवं शिशु परिचर्या का महत्व न केवल इस कारण है कि इस विषय में दक्ष दाई परंपरा अभी तक देश में सर्वत्र विद्यमान है वरन् इस परंपरा में ज्ञान का अथाह भंडार आज भी उपलब्ध है। हां यह भी निर्विवाद सत्य है कि आज यह परंपरा समाज में बदलते मूल्यों में पश्चिमी सभ्यता के बढ़ते प्रभाव व गलत सरकारी नीतियों के रहते दिन ब दिन कमजोर हो रही है। इन्हीं कारणों से लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति ने १९८८-८९ में चेतना के सहयोग से सर्वेक्षण और अध्ययनों के बाद जो राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया था, उस पर आधारित इस महानिबंध को हमारी मद्रास स्थित सहयोगी संस्था, पी.पी.एस.टी. फाउंडेशन ने अंग्रेजी में प्रकाशित किया था।

कतिपय कारणों से इस महानिबंध एवं इसके दूसरे भाग को हिंदी में प्रस्तुत करने में विलंब हुआ जिसके हम क्षमाप्रार्थी हैं। संप्रति ये महानिबंध कापार्ट के सहयोग से प्रकाशित हो रहे हैं। इसमें लखनऊ के राज्य अयुर्वेदिक कालेज के मातृ एवं शिशु विभाग के अध्यक्ष वैद्य देवेंद्र नाथ मिश्र के सुझावों के हम विशेष आभारी हैं। हमें आशा है कि ये महानिबंध न केवल एक लाभकारी चर्चा के सूत्रपात होंगे वरन् जन-जन में फैली इन परंपराओं को और सशक्त बनाने में सहायता कर लोक कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान भी कर सकेंगे।

जीवनीय सोसायटी
ई-III/२४९, सेक्टर एच
अलीगंज, लखनऊ-२२६०२०

पं. माधवाचार्य
डॉ. नरेन्द्र मेहरोत्रा
संपादक, हिंदी रूपांतर

लोस्वापसंस क्या है ?

लोस्वापसंस स्वास्थ्य रक्षा की राष्ट्रव्यापी देशी पद्धतियों और लोक स्वास्थ्य परंपराओं के पुनरुज्जीवन के लिए प्रतिबद्ध व्यक्तियों, वर्गों एवं संस्थाओं का एक नेटवर्क है। भारतीय समाज में विद्यमान लोकस्वास्थ्य परंपराओं का पुनर्निर्माण एवं इस प्रक्रिया में प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा के परंपरागत आत्मनिर्भर स्वरूप का पुनरुज्जीवन समिति का प्रधान उद्देश्य है।

पृष्ठभूमि

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि हमारे देश में, जनजातियों के क्षेत्र में एवं अन्यत्र भी, स्थानीय स्वास्थ्य रक्षा की अनगिनत लोक परंपराएं सर्वत्र विद्यमान हैं। इनमें से अनेक परंपराएं आयुर्वेद, यूनानी और सिद्ध जैसी भारतीय स्वास्थ्य पद्धतियों के प्रकाश में मूल्यांकन करने पर शास्त्रसंगत सिद्ध होती है। लाखों ग्राम्य चिकित्सक, दाइयां और गृहिणियां इन परंपराओं की वाहक हैं। ये परंपरागत प्रयोग मौलिक स्वास्थ्य के अनेक अंगों, जैसे जच्चा-बच्चा स्वास्थ्य रक्षा, खाद्य और पोषाहार, सामान्य रोगों के उपचार तथा घरेलू उपचार से संबद्ध हैं। कुछ समुदायों में हड्डियां बैठाने की, विष-चिकित्सा की, कतिपय चिरकालिक व्याधियों के उपचार की तथा नाड़ी परीक्षा जैसी नैदानिक विधियों की विशिष्ट परंपराएं चली आ रही हैं।

यह एक तथ्य है कि आज ये परंपराएं इनमें निहित प्रबल संभावनाओं के बावजूद दुर्बल स्थिति में है। पर हमारा यह विश्वास है कि आयुर्वेद, यूनानी और सिद्ध जैसी स्थापित भारतीय चिकित्सा पद्धतियों से इन परंपराओं के तालमेल को प्रोत्साहित करके इन परंपराओं को नवजीवन प्रदान किया जा सकता है। इन लोक स्वास्थ्य परंपराओं और देशी विज्ञानों में अन्योन्याश्रय संबंध होने के कारण इस प्रकार के तालमेल से एक ओर लोक स्वास्थ्य परंपराओं की शक्ति बढ़ेगी और दूसरी ओर इन पद्धतियों के सिद्धान्तों को, जिन्हें बृहत्तर भारतीय समाज से पुनः सम्पर्क साधना है, नया बल मिलेगा। इसी सोच को लेकर दिसम्बर १९८५ में, जब सम्पूर्ण भारत की तीस से अधिक संस्थाएं और अनेक व्यक्ति महाराष्ट्र के कशेले गांव में अपने

अनुभवों को आदान-प्रदान करने के लिए एकत्र हुए तो एक नेटवर्क के रूप में लोस्वापसंस की स्थापना की गयी।

समिति के उद्देश्य

- देश में विद्यमान लोक स्वास्थ्य परंपराओं के सर्वेक्षण और अभिलेखन का काम सम्पन्न कराना।
- प्रशिक्षण, अनुसंधान एवं अभिलेखन केन्द्रों की स्थापना करना।
- लोक-चिकित्सकों के लिए छात्रवृत्तियां तथा अध्ययन एवं यात्रा अनुदान की व्यवस्था करना।
- देशी स्वास्थ्य वैज्ञानिकों को तथा संवर्धन कार्य में अंशदान कर सकने वाले अन्य व्यक्तियों तथा समूहों का एक सक्रिय नेटवर्कतैयार करना।
- नीति विषयक अध्ययन को संचालित एवं प्रोत्साहित करना तथा उसके आधार पर सभी सम्बद्ध लोगों को परामर्श देना और उन परामर्शों के क्रियान्वयन के लिए प्रयास करना।
- औषधीय वनस्पतिशालाओं, उद्यानों और वनों की स्थापना करना तथा विभिन्न व्यक्तियों, संस्थाओं और स्थानीय निकायों आदि के सहयोग से उनका संवर्धन करना।
- लोक स्वास्थ्य परम्पराओं को समाविष्ट करने वाले देशी स्वास्थ्य विज्ञान से सम्बन्धित वैज्ञानिक शिक्षण सामग्री का अभिकल्पन, प्रचार-प्रसार तथा प्रोन्नति एवं इस प्रकार की सामग्री को स्कूलों, कालेजों तथा अन्य शिक्षा संस्थाओं के पाठ्य क्रमों में समाविष्ट कराने के लिए प्रयत्न करना।
- इस क्षेत्र में होने वाले कार्यों का मूल्यांकन करने, सूचनाओं के प्रचार-प्रसार तथा अनुभवों के आदान-प्रदान के लिए सम्मेलनों, प्रदर्शनियों तथा कार्यशालाओं आदि का आयोजन करना।

संपर्क का पता :

सचिव:

लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति

पो. बाक्स ७१०२, कोयंबतूर - ६४१०४५

जीवनीय सोसायटी

जीवनीय सोसायटी एक ऐसे स्वस्थ समाज के निर्माण को कटिबद्ध है जिसमें लोग अपनी जीवनी शक्ति की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति प्राप्त कर सकें। इस हेतु संस्था ऐसे चुने हुए व्यक्तियों एवं संस्थाओं की सहभागिता ले रही है जो स्वास्थ्य के क्षेत्र में व्यक्ति, समाज एवं देश, सभी की आत्मनिर्भरता को विशेष महत्व देते हैं।

एक आंदोलन

जीवनीय सोसायटी से जुड़े सभी साथियों का विश्वास रहा है कि स्वास्थ्य के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता किसी भी समाज के बहुमुखी विकास के लिए आवश्यक है। इसी विश्वास के रहते जीवनीय परिवार के सभी साथी मानव के सामाजिक विकास को कटिबद्ध व ऐसे आंदोलनों से सक्रिय रूप से जुड़े रहे हैं। यद्यपि सोसायटी का औपचारिक गठन वर्ष १९९१ में हुआ व इसका रजिस्ट्रेशन १९९२ में ही संभव हो सका, इसके अधिकांश सदस्य पिछले कई वर्षों में ऐसे आंदोलनों व कार्यक्रमों से जुड़े रहकर वर्ष १९८८-८९ से लखनऊ व उसके आस-पास के क्षेत्रों में विशेष रूप से सक्रिय रहे। इस दौरान इन साथियों ने कानपुर में पीलिया की महामारी जैसी विभीषिकाओं से जूझने से लेकर जीवनीय पत्रिका व भित्ति-पत्रों आदि के प्रकाशन व वनौषधि उद्यानों के प्रचलन से स्वास्थ्य शिक्षा व स्वास्थ्य में स्थानीय संसाधनों के महत्व, उनकी उपयोगिता व आवश्यक अनुसंधान जैसे विषयों पर राष्ट्रीय गोष्ठियों के आयोजन जैसे कई प्रयास किए हैं।

संस्था के मुख्य उद्देश्य

संस्था मुख्यतः निम्न कार्यों को प्रतिपादित करने को प्रतिबद्ध है।

(१) प्राथमिक स्वास्थ्य की देखभाल के आत्मनिर्भर प्रतिरूपों (माडलों) का विकास।

(२) भारतीय स्वास्थ्य पद्धतियों के ज्ञान के शिक्षण, अनुसंधान और संप्रेषण का कार्य हाथ में लेना और इन्हें प्रोत्साहित करना।

(३) औषधीय वनस्पतियों की कृषि, प्रवर्धन और सरल उपयोग को प्रोत्साहित करना।

(४) उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक अन्य कार्यों को यथासमय हाथ में लेना और पूर्ण करना।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संस्था जन-जन का आवाहन करती है।

संपर्क का पता

सचिव, जीवनीय सोसायटी

ई III-२४९, सेक्टर एच

अलीगंज, लखनऊ-२२६०२०

फोन : ७७५६८

प्रस्तावना

मां और बच्चे का स्वास्थ्य एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है और इस विषय में सभी समाजों में परंपरागत ज्ञान व्यापक रूप से उपलब्ध है। यह इस दृष्टि से भी अनूठा है कि संभवतः यही ऐसा क्षेत्र है जिसमें परंपरागत स्वास्थ्य अभ्यासी विशेषज्ञों का विशालतम निकाय यानी दाइयां हैं। यह इस अर्थ में भी विशिष्ट है कि इसी क्षेत्र में सरकार ने (चाहे जितनी अनिच्छा से) स्थानीय स्वास्थ्य कर्मियों अर्थात् दाइयों के अस्तित्व को मान्यता प्रदान की है। दाइयों का प्रशिक्षण अब न केवल भारत में ही बल्कि ५० से भी अधिक देशों में, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों का एक अनिवार्य अंग है।

इण्डियन काउंसिल आफ मेडिकल रिसर्च की हाल की एक रपट के अनुसार देश में गर्भधारण व प्रसव के दौरान माता की मृत्युदर ४-७ प्रति १००० जीवित शिशु जन्म है। शिशु मृत्युदर ९ प्रति १००० जीवित शिशु जन्म है। शिशुओं में भार की कमी की घटना ३५ से ४५ प्रतिशत तक है (१)। इस स्थिति के लिए कौन उत्तरदायी है? मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य के क्षेत्र में स्थानीय प्रचलनों की सूचनाओं का संकलन संप्रति अनेक अध्ययनों एवं सर्वेक्षणों में उपलब्ध है। इनमें से अधिकांश अध्ययन आधुनिक चिकित्सा पद्धति के उन अभ्यासियों ने किए है जो पोषाहार, प्रसूति एवं स्त्री रोग विज्ञान, कौमारभृत्य अथवा सामुदायिक स्वास्थ्य विषयों में प्रशिक्षित हैं। ये सभी अध्ययन इस दृष्टि से संकीर्ण हैं कि स्थानीय प्रचलनों के उनके "मूल्यांकन" निरपवाद रूप से आधुनिक चिकित्सा के दृष्टिकोण से ही किये गये हैं। अतः यह सभी मूल्यांकन इस दृष्टिकोण के पूर्वाग्रहों से ग्रस्त है। देशी चिकित्सा पद्धतियों के परिप्रेक्ष्य में इन प्रचलनों के मूल्यांकन-अध्ययन विरले ही हैं। इसका एक उदाहरण 'नेपाल में शिशु-पालन के परंपरागत व्यवहार' है (२)।

लोस्वापसंस सर्वेक्षण

१९८६ में लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति (लोस्वापसंस) ने 'परंपरागत चिकित्सा में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य' विषय पर एक सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय लिया। मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य की प्रचलित परंपराओं से संबंधित सूचनाओं के संकलन के लिए एक व्यापक सर्वेक्षण कराने का निर्णय लिया गया। इस प्रकार एकत्रित सूचनाओं का विश्लेषण एवं मूल्यांकन आयुर्वेद के दृष्टिकोण से किया गया। इन प्रचलनों के विषय में आयुर्वेद के विशेषज्ञों के विचार भी आमंत्रित किये गए। तदनंतर मूल्यांकन करने वाले विशेषज्ञों और उन विभिन्न क्षेत्रों के क्षेत्र-समूहों के प्रतिनिधियों में परस्पर चर्चा हुई जहां ये सर्वेक्षण कराए गये थे। दिसंबर १९८९ में "परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य" विषय पर एक राष्ट्रीय सम्मेलन दिल्ली में आयोजित किया गया। सम्मेलन में इस विषय से संबद्ध विविध पहलुओं पर आयुर्वेद के दृष्टकोण से और स्वतंत्र रूप से, आधुनिक दृष्टकोण से भी प्रस्तुतियां की गईं। सर्वेक्षण तथा मूल्यांकन के परिणाम भी प्रस्तुत करके उन पर विस्तृत चर्चा की गयी।

प्रस्तुत महानिबंध का प्रयोजन

इस महानिबंध का लक्ष्य 'गर्भिणीचर्या' अर्थात् गर्भवती की देखभाल के परंपरागत अभिगम् को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना है। लोस्वापसंस सर्वेक्षण के दौरान पाए गए स्थानीय रीति-रिवाजों तथा साहित्य में उपलब्ध अन्य सर्वेक्षणों की टीका भी इसमें की गयी है।

यह स्पष्ट है कि लोक स्वास्थ्य परंपराओं और भारतीय चिकित्सा पद्धतियों (भाचिप) में परस्पर संबंध बनाने की प्रक्रिया एक संवाद के रूप में ही सफल होगी। इसमें भाचिप का निवेश हमें लोक स्वास्थ्य परंपराओं के निर्धारण और मूल्यांकन में सहायता करेगा। इससे यह निश्चय हो सकेगा कि कौन सी परंपरा ठीक और पूर्ण है, कौन सी अपूर्ण है और कौन-कौन सी विकृत हैं। साथ ही यह भी संभव है कि विविध स्थानीय परंपराओं के विधिवत् प्रेक्षण से स्वयं भाचिप भी लाभान्वित होगी, यद्यपि इनमें से कुछ को अभी भाचिप के सिद्धांतों

के प्रकाश में तत्काल समझा नहीं जा सकता है। साथ ही, इनमें कुछ ऐसी नयी जानकारी का उपयोग भी समाविष्ट है जिनका वर्णन हमारे शास्त्रीय ग्रंथों में उपलब्ध नहीं है। अतः ऐसी परंपराओं के चलनों का विशेष अध्ययन किया जाना चाहिए। हमें आशा है कि इस प्रकार की परस्पर प्रक्रिया हमारी भारतीय चिकित्सा पद्धतियों में विशेष गति उत्पन्न करेगी और उनके अभ्यासों को अद्यतन बनायेगी।

गर्भधारण

मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य का विषय गर्भधारण से भी काफी पहले शुरू हो जाता है। क्योंकि आर्तव (नारी जननांग से मासिक स्राव) और शुक्र की गुणवत्ता ही गर्भ में परिलक्षित होती है, स्वस्थ शिशु के गर्भधारण और विकास के लिए मासिक धर्म (ऋतु), गर्भ (क्षेत्र), पुष्टिकर तरल (रस अम्बु) और स्वस्थ वीर्य (बीज शुक्र) इन चार कारकों का उचित समन्वय आवश्यक है:

सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने (सुश्रुत संहिता, शारीर २१३३)।

इसलिए स्वस्थ शिशु की उत्पत्ति के लिए उसके अंशदायीकारक शुक्र और आर्तव का सामान्य स्वस्थ स्थिति में होना आवश्यक है।

समुचित गर्भधारण एवं स्वस्थ शिशु के जन्म के लिए आवश्यक कारकों की चर्चा के प्रसंग में आचार्यों ने दो बिंदुओं पर बल दिया है। यह सुझाव दिया गया है कि स्त्री और पुरुष का गोत्र या कुल अलग होना चाहिए, तभी दोनों के संयोग से उत्पन्न संतान स्वस्थ और दृढ़ होगी (चरकसंहिता, शारीर २/३ पर चक्रपाणि की टीका)। भावमिश्र ने मैथुन के लिए प्रतिबन्धों को गिनाते हुए समान गोत्र वाली स्त्री के साथ मैथुन निषिद्ध बताया है (भावप्रकाश, पूर्वखण्ड, दिन. ५/३०२)। धर्मशास्त्रों ने भी विवाह के लिए उपयुक्त साथी का चुनाव *'असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः'* (ऐसी कन्या से विवाह करना चाहिए जो अपनी मां की बंधु न हो और अपने पिता के गोत्रवाली न हो) इस आधार पर करने को कहा है (३)। स्वस्थ संतति के लिए विवाह की उम्र पुरुष के लिए २० से २५ और स्त्री के लिए १६ वर्ष बतायी गयी है (अष्टांग हृदय शारीर १/८ : सुश्रुत संहिता, सूत्र ३५/९)।

---

* *पारिभाषिक शब्दों की सूची एवं अर्थ शब्दसंग्रह में अलग से दिये गये हैं। (परिशिष्ट एक)*

ऋतुकाल में उचित जीवनचर्या

गर्भाशय को स्वस्थ तथा आर्तव को सामान्य बनाये रखने के लिए आयुर्वेद के ग्रंथों के अनुसार ऋतु काल (मासिक धर्म के दिन) में स्त्री को कुछ नियमों का पालन करना चाहिए। ऋतु काल में स्त्री को दिन में सोना नहीं चाहिए। तेल-मालिश, दौड़ना, उपवास और शारीरिक श्रम के कार्य नहीं करने चाहिए, और तेज आवाज नहीं सुनना चाहिए। उसे नाखून नहीं कटाने चाहिए, रोना नहीं चाहिए और आंखों में काजल नहीं लगाना चाहिए।

गर्भधारण के लिए उत्तम काल

सुश्रुत संहिता के अनुसार मासिक स्राव के बंद होने के बाद से बारह रातें गर्भधारण के लिए उत्तम काल मानी गयी हैं। (सुश्रुत संहिता, शारीर ३/६)। मासिक स्राव के प्रारंभ होते ही युवा पत्नी को मैथुन से विरत हो जाना चाहिए, कुशघास की शय्या पर सोना चाहिए और छोटे पात्र में सादा एवं हल्का खाना लेना चाहिए। चौथे दिन उसे अभ्यंग-स्नान (तेल लगाने के बाद सिर से नहाना) करना चाहिए। तदनंतर उसे सफेद कपड़ा धारण करना चाहिए। उसके पति को भी ऐसा ही करना चाहिए। दोनों को सफेद कपड़े और फूलमाला पहन कर प्रसन्न मन से एक दूसरे के प्रति आकर्षण भाव से संभोगरत हो जाना चाहिए (चरकसंहिता, शारीर ८/७)।

परंतु आधुनिक विज्ञान से यह स्पष्ट हो गया है कि मासिक धर्म के बाद सामान्यया ४ से ८ दिन तक गर्भधारण नहीं हो सकता है।

एक दूसरे के प्रति आकर्षण और प्रसन्न मानसिकता स्वस्थ शिशु के जन्म के लिए अनिवार्य है और इसीलिए आचार्यों ने इन बिंदुओं पर जोर दिया है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि स्त्री और पुरुष की मनःस्थिति अच्छी हो अर्थात् उनके मन में क्रोध, ईर्ष्या, भय और घृणा जैसे भाव न हों। हमें महाभारत जैसे महाकाव्यों में इस बात के दृष्टान्त मिलते हैं कि मैथुन के समय स्त्री के मन में घृणा के भाव के फलस्वरूप आँखें बंद कर लेने के कारण धृतराष्ट्र जैसे (जो जन्म से अंधे उत्पन्न हुए) और भय के कारण पाण्डु जैसे (जो जन्म से कमजोर और रोगी थे) विकलांग बच्चे उत्पन्न हुए।

दिन के समय में मैथुन हानिकारक माना गया है। प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है – *"प्राणं वा एति प्रस्कन्दति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते, ब्रह्मचर्यमेव तद् यद् रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते"* अर्थात् जो दिन में संभोग करते हैं वे अपनी प्राणवत्ता को खो बैठते हैं और जो केवल रात में ही संभोग करते हैं वे ब्रह्मचारी बने रहते हैं।

गर्भ और उसका निर्माण

जब किसी स्वस्थ व्यक्ति का शुक्र उर्वर काल में किसी ऐसी स्वस्थ महिला के आर्तव से संपर्क करता है, जिसका गर्भाशय स्वस्थ है, तब जीव (जीवात्मा) मन के साथ गर्भ में प्रवेश कर जाता है। इस गर्भ का पोषण स्वास्थ्यवर्धक रस (मां की

गर्भ में माता-पिता का योगदान

हमारा शरीर आयुर्वेद के सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में पाँच महाभूतों से बना है। ये पाँच महाभूत शरीर में माता-पिता, रस, आत्मा आदि के द्वारा आते हैं। इन्हीं के द्वारा शरीर के विभिन्न अवयव एवं मानसिक गुण आदि प्रकट होते हैं जिन्हें संक्षेप में निम्न तालिका में देखा जा सकता है :

मातृज भाव	पितृज भाव	आत्मज भाव
त्वचा, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, नाभि, हृदय, क्लोम, यकृत, प्लीहा, वृक्क, वस्ति, पुरीषाधान, आमाशय, पक्वाशय, उत्तरगुद, अधोगुद, क्षुद्रान्त, स्थूलान्त्र, वपा एवं वपावहन	केश, श्मश्रु, नख, लोम, दन्त, अस्थि, सिरा, स्नायु, धमनी, शुक्र	उस विशिष्ट योनि में उत्पत्ति, आयु, आत्मज्ञान, मन, इन्द्रियां, प्राणापान का प्रेरण एवं धारण, आकृति, स्वर, विशिष्ट वर्ण, सुख-दुख, इच्छा, द्वेष, चेतना, धृति, बुद्धि, स्मृति, अहंकार, प्रयत्न

सात्म्यज भाव	रसज भाव	मानस भाव
आयु, आरोग्य, अनालस्य, प्रभा, बल, अलोलुपत्व, इन्द्रियप्रसाद, स्वर, वर्ण बीज सम्पत्, सदैव आनंद की प्राप्ति, ओज सम्पत् आदि	शरीरोत्पत्ति, अंग-प्रत्यंग व्यक्तता एवं वृद्धि, शरीर का प्राणों से अनुबन्ध, तृप्ति, पुष्टि, उत्साह, बल, अस्वास्थ्य, स्वास्थ्य, वर्ण आदि	इसके अन्तर्गत पुनः मानसिक गुणों के आधार पर सात्विक, राजसिक, एवं तामसिक भावों की उत्पत्ति को आधार बताया गया है

अतः स्वस्थ शिशु के जन्म के लिए आवश्यक है कि उसमें माता और पिता दोनों के उचित रस और गुण सही मात्रा में पाए जाएं।

खुराक का अंतिम उत्पादन) द्वारा होता है तथा माँ के उपयुक्त आहार विहार से उसका संवर्धन होता है। इसके बाद यह गर्भ क्रमशः समस्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से युक्त होकर विकास को प्राप्त होता है तथा प्रसव-काल तक उनम शक्ति, रूप और मानसिक गुणों से समवेत हो जाता है (चरकसंहिता, शारीर ३/३)। इस पूरे प्रसंग में न केवल शुक्र एवं आर्तव के स्वास्थ्य के महत्व पर जोर दिया गया है वरन् गर्भावस्था के दौरान उचित आहार-विहार व मानसिकता को भी आवश्यक माना है।

प्रसव-काल

आठवें मास के पूर्ण होने पर गर्भ प्रसव-योग्य परिपक्व हो जाता है। अर्थात् नवें मास के पहले दिन से किसी भी समय प्रसव के लिए तैयार रहना चाहिए (चरकसंहिता, शारीर ३/२५)। यह बात विशेषकर सामान्य प्रसव के लिए महत्वपूर्ण है।

गर्भावस्था की पहचान

प्रसूति तंत्र का विषय तीन क्षेत्रों में बाँटा गया है, अर्थात्-

१. **गर्भावस्था या गर्भिणी परिचर्या** - इसमें सगर्भावस्था की पहचान और गर्भावस्था में देखभाल सम्मिलित है।

२. **प्रसवकाल अवस्था परिचर्या** - अर्थात् शिशु जन्म की प्रक्रिया यानी प्रसव वेदना के आरंभ होने से लेकर अपरा (जरायु, प्लैसेंटा) के निकलने तक की स्थिति।

३. **प्रसवोपरांत अवस्था - सूतिका परिचर्या** - नवजात शिशु की देखभाल, स्तन्यपान काल में मां की देखभाल।

गर्भिणी परिचर्या की पहली अवस्था सगर्भावस्था की पहचान से शुरू होती है। सगर्भावस्था की पहचान निम्न आधारों पर संभव है :-

(१) आनुमानिक चिन्ह एवं लक्षण

(२) संदिग्ध चिन्ह

(३) निर्णायक चिन्ह

आचार्यों ने इनका वर्गीकरण 'सद्योगृहीत गर्भलक्षण' और 'व्यक्तगर्भलक्षण' के रूप में किया है। सद्योगृहीत गर्भलक्षण उन चिन्हों और लक्षणों का समूह है (आनुमानिक एवं संदिग्ध लक्षणों सहित) जिनसे गर्भधारण के एक सप्ताह के अंदर अथवा मैथुन के तत्काल बाद भी गर्भधारण की पहचान की जा सकती है। व्यक्त गर्भ लक्षण (निर्णायक चिन्ह) प्रायः माहवारी के बन्द होने के बाद प्रकट होते हैं जिन्हें मासिक धर्म के प्रथम लोप के बाद से देखा जाता है। इनसे सगर्भावस्था की पुष्टि होती है।

१. सद्योगृहीत गर्भ लक्षण

गर्भधारण के तत्काल बाद प्रकट होने वाले चिन्ह और लक्षण चरक के शब्दों में *"विकृतौर निष्ठी वमंग साद सतन्द्र अपहर्षो हृदये व्यथा च तृप्त बीजग्रहणं च योन्यां गर्भस्य सद्यो गतस्य लिंगम"* - अर्थात् बार बार थूकने की प्रवृत्ति, भारीपन,

बेचैनी, उनींदापन, रोमांच, सीने में दर्द, प्रसन्नता की अनुभूति, योनि में वीर्य का धारण आदि तत्काल गृहीत गर्भ के लक्षण हैं (चरकसंहिता, शारीर ३/३)।

सुश्रुत के अनुसार – *"श्रमो ग्लानिः पिपासा सक्थिसादनं शुक्रशोणितयोरवबन्धः स्फुरणं च योनेः"* अर्थात् थकान, मनस्ताप, अतिशय प्यास, जांघों में शिथिलता, शुक्र और शोणित का योनि में बने रहना (मैथुन के बाद से बाहर न निकलना) और योनि में थरथराहट (सुश्रुत संहिता, शारीर ३/१०)

वाग्भट्ट द्वितीय के अनुसार *"अंगग्रह-तृप्तिर्गुरुत्वं स्फुरणं शुक्रार्तवानांमनु-बन्धनं हृदयस्पन्दनं तन्द्रा तृड् ग्लानि लोमहर्षणं"* अर्थात् बदन दर्द, तृप्ति, भारीपन, कंपकंपी, शुक्र और आर्तव का मिलकर रह जाना, धड़कन, गश आना, अतिशय प्यास, मनस्ताप और रोमांच ये तत्काल गृहीत गर्भ के लक्षण हैं। (अष्टांगहृदय, शारीर १/३७-८)। लक्षण सूची में वाग्भट्ट प्रथम ने मतली और अत्यधिक लालास्राव को भी सम्मिलित किया है।

आचार्यों ने 'सद्योगृहीत' के अलग-अलग अर्थ निकाले हैं। कुछ की सम्मति में ये वे चिन्ह और लक्षण हैं जिन्हें गर्भधारण के तत्काल बाद अर्थात् शुक्र और शोणित के मिलने के क्षण में अथवा संभोग के तुरंत बाद गर्भिणी स्त्री अनुभव करती है और देखती है। कुछ की सम्मति में ये वे लक्षण और चिन्ह हैं जो गर्भधारण के एक सप्ताह के अन्दर प्रकट होते हैं। कुछ अन्य आचार्यों के विचार में ये लक्षण माहवारी के बंद होने से पहले प्रकट होते हैं। इन चिन्हों और लक्षणों को उन स्त्रियों

में पाया जाना बताते हैं जो हाल ही गर्भवती हुई हो(५)। यद्यपि गर्भधारण के ये लक्षण अन्यत्र भी पाए जाते हैं पर इन लक्षण समूहों का एक साथ पाया जाना गर्भधारण की ओर इंगित करता है। यद्यपि आधुनिक विज्ञान में गर्भधारण की पहचान के कुछ निश्चित परीक्षण विकसित हुए हैं पर सर्वसाधारण की जानकारी के लिए ये पारंपरिक ज्ञान-विशेष उपयोगी हैं।

२. व्यक्त गर्भलक्षण/दौहृदय लक्षण

ये वे चिन्ह और लक्षण हैं जो गर्भ की वृद्धि के स्पष्ट हो जाने के बाद देखे जाते हैं। चरक ने इनकी व्याख्या 'दौहृदयम्' अथवा दो हृदयों के अस्तित्व के लक्षणों के रूप में की है और गर्भिणी तथा गर्भ की उचित देखभाल के लिए उनका ज्ञान अनिवार्य बताया है। ये चिन्ह और लक्षण गर्भावस्था के तीसरे मास के दर्म्यान देखे जाते हैं। चरक ने इनका वर्णन इस प्रकार किया है :-

"आर्तवादर्शनमास्य संस्रवणं अनन्नाभिलाषा छर्दिः को म्लकामता अरोच च विशेषेण श्रद्धा प्रणय मुद्धावेच्चेषु भातेषु गुरुगात्रत्वं चक्षुषो ग्लानिः स्तनयोः स्तन्यमोष्ठयोः स्तनमण्डलयोश्च कार्तर्ष्यन्यमत्याते श्वयथु पादयोरीषल्लोमराज्योद्गमो योन्याश्चतालात्वमिति गर्भे पर्यागते रूपाणि भवन्ति।" अर्थात् माहवारी की बंदी, अत्यधिक लालास्राव, आहार के प्रति अरुचि, उल्टी, क्षुधानाश, खट्टे पदार्थों के प्रति ललक, कभी अच्छी और कभी घटिया (लाभदायक/हानिकार) चीजों के प्रति आकर्षण, शरीर में भारीपन, आंखों में निस्तेजता, स्तनों से दुग्धस्राव, ओठों और स्तनों के आसपास काला पड़ना, पांवों में हल्की सी सूजन, रोमावली का विकास (नाभि तक बालों की खड़ी लीक) और योनि का फैलाव व्यक्त गर्भलक्षण है (चरकसंहिता, शारीर ४/१६)।

इनके अतिरिक्त सुश्रुत और भावमिश्र ने पलकों का बार - बार गिरना, बिना किसी स्पष्ट कारण के उल्टी, सुगन्धि से अरुचि, अतिशय लालास्राव और थकान ये लक्षण भी गिनाये हैं (सुश्रुत संहिता, शारीर ३/११ भावप्रकाश ३/४२)। वैद्य वाग्भट्ट ने अष्टांग संग्रह में अन्य चिन्हों और लक्षणों के साथ यह भी कहा है, *"यथा यथा च गर्भो वृद्धिमान्पोति तथा भारहार - रसापचाराच्च स्त्रियः बलक्षयः"* अर्थात् गर्भ में भार की वृद्धि के कारण स्त्री के पोषक तत्वों का विपथन होता है जिससे उसकी ऊर्जा घटती है (अष्टांगहृदय, शारीर २/९ और ५/९)।

अष्टांगहृदय में वाग्भट्ट ने कृशता, अपच, सारे शरीर में जलन और विभिन्न इच्छाओं का प्रकटीकरण, इन लक्षणों को भी जोड़ा है।

चरकसंहिता और काश्यपसंहिता में चौथे महीने से लेकर सातवें महीने तक के मासानुमासिक लक्षण भी गिनाये हैं जो निम्नवत है :-

१. **चौथा महीना** - *"चतुर्थे मासि स्थिरत्वं आपद्यते गर्भः तस्मात्तदा गर्भिणी गुरुगात्रत्वं अधिकं आपद्यते विशेषेण"* अर्थात गर्भ में ठहराव के कारण चौथे महीने में स्त्री को शरीर मे अधिक थकान की अनुभूति होती है (चरकसंहिता, शारीर ४/२०)।

२. **पांचवां महीना** - चरक कहते हैं, *"पंचमे मासि गर्भस्य मांसशोणितोपचयो भवति, अधिकं अन्येभ्यो मासेभ्यः तस्मात् तदा गर्भिणी कार्श्यमापद्यते विशेषेण"*, अर्थात् पांचवें महीने के दर्म्यान, और महीनों की तुलना में गर्भ के मांस और रक्त में अतिशय वृद्धि होती है, जिसके कारण गर्भिणी अत्यंत कमजोर हो जाती है (चरकसंहिता, शारीर ४/२१)।

काश्यप ने भी इसी प्रकार का लक्षण बताया है, *"गर्भिणी पंचमे मासि तस्मात् काश्र्येण युज्यते"*, अर्थात् पांचवें महीने में गर्भिणी दुबली हो जाती है (काश्यप संहिता)। चरक के शब्दों की टीका चक्रपाणि के शब्दों में इस प्रकार है, *"यतो गर्भः मांसादि पोषणेनैव क्षीण आहार रसेन मातु मांसादि सम्यक् पोषयति"* अर्थात् मां को दिया गया पुष्टाहार इस महीने में बच्चे के पोषण में खर्च हो जाता है इसलिए मां दुबली हो जाती है।

३. **छठा महीना** - चरक कहते हैं, *"षष्ठे मासि गर्भस्य बलवर्णोपचयो भवत्यधिक मन्येभ्यो मासेभ्यः तस्मात्तदा गर्भिणी बलवर्णहानिं आपद्यते विशेषेण"* अर्थात् गर्भावस्था के छठे महीने में गर्भ की शक्ति और रंगत में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होती है जिसके कारण गर्भिणी की शक्ति और रंगत में पर्याप्त कमी हो जाती है (चरकसंहिता, शारीर ४/२२)।

४. **सातवां महीना** - *"सप्तमे मासि गर्भः सर्वैर्भावैराप्यायते, तस्मात्तदा गर्भिणी सर्वाकारैः क्लांततापाद्यते"* अर्थात् गर्भावस्था के सातवें

महीने में गर्भ की सर्वतोमुखी वृद्धि होती है, जिसके कारण गर्भिणी अपने स्वास्थ्य के सभी पहलुओं में अत्यत अभावग्रस्त हो जाती है (चरकसंहिता, शारीर ४/२३)। मां की दैहिक स्थिति अभावग्रस्त होती है, सातवें महीने में मांस, रक्त आदि सभी कारक एक साथ घट जाते हैं (चरकसंहिता, शारीर ४/२३ पर चक्रपाणिदत्त की टीका)।

५. **आठवां महीना** – गर्भ की अपरिपक्वता के कारण गर्भावस्था के आठवें महीने के दर्म्यान मां से गर्भ को पोषाहार ले जाने वाले स्रोतसों द्वारा ओजस* का आवागमन होता रहता है।

यह महत्वपूर्ण है कि आज से कई हजार वर्ष पूर्व भी आचार्यों ने अपने सूक्ष्म अवलोकन और परीक्षणों से ऐसे विस्तृत विवरण दिए जो मां एवं शिशु के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए बहुत उपयोगी है। ऐसे ही कई अनुभवों के आधार पर दिए गए सुझावों पर अमल करके आज भी मातृ एवं शिशु कल्याण के क्षेत्र में काफी लाभ उठाया जा सकता है।

उदाहरण के तौर पर कहा गया है कि गर्भिणी को यह भी न बताया जाय कि तुम्हे आठवां महीना लगा है क्योंकि इससे वह महीने के खतरों से और भी डरने लगेगी जिससे उसके शरीर में वात की वृद्धि होगी जिसके फलस्वरूप समयपूर्व प्रसव या भ्रूण-मृत्यु तक के खतरे उत्पन्न हो सकते हैं। आठवें महीने में ओज स्थिर नहीं रहता है। यदि ओजस मां के शरीर से गर्भ में चला गया तो मां का जीवन खतरे में रहेगा और यदि वह गर्भ से मां के शरीर में आ गया तो गर्भ मर सकता है। इसलिए भारतीय आचार्य इस मास में प्रसव उपयुक्त नहीं मानते (चरकसंहिता, शारीर ४/२४)।

---

* *ओजस की परिभाषा – 'ओजस्तेजो धातूनां' अर्थात् सभी धातुओं के सार को ओज कहते हैं। ओज शरीर का धारण करने वाला है और आंतरिक शक्ति तथा रोगनिरोध शक्ति का स्रोत है।*

लोक स्वास्थ्य परंपराएं

इस खंड में हम गर्भावस्था की पहचान के विषय में स्थानीय स्तर पर विभिन्न समुदायों में विद्यमान ज्ञान की छानबीन करना चाहेंगे। १९८८ ई. में लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति (लोस्वापसंस) ने जच्चा-बच्चा देखभाल विषय पर संपूर्ण भारत के समुदायों में प्रचलित विभिन्न प्रथाओं की छानबीन के लिए एक अखिल भारतीय सर्वेक्षण कराया था (विवरण के लिए परिशिष्ट-२ देखें) जहां भी अन्यथा संदर्भ न दिया गया हो उद्धृत प्रेक्षण/प्रथाएं इसी सर्वेक्षण से ली गयी समझें।

रजोनिरोध, उबकाई-वमन, अरुचि और खट्टे पदार्थों की चाह सामान्य रूप से सगर्भावस्था के लक्षण माने जाते थे। गर्भ की गतिविधियों (गर्भस्पंदन) तक से कुछ लोग सगर्भावस्था की पुष्टि करते थे जो आयुर्वेद तथा आधुनिक चिकित्सा दोनों के अनुसार पूर्णतः सकारात्मक लक्षण है (६)। स्थानीय समुदायों द्वारा संसूचित रजोनिरोध, वमन, आलस्य, चक्कर, क्षुधानाश, लालास्राव, पेट-फूलना, गर्भस्पंदन, चूचुकों के चारों ओर कालापन, स्तनों से दुग्धस्राव, खट्टी चीजों से बेहद लगाव, पांवों में हल्की सूजन, पेट पर धारियों का बनना, प्रजनन अंगों की आकार-वृद्धि, गर्भ का डोलना आदि सगर्भावस्था की पहचान बताए गए हैं।

तमिलनाडु के कुछ भागों में सगर्भावस्था की पहचान के अन्य क्रम बड़ी प्रचुरता से व्यवहृत हैं। एक वयोवृद्ध दाई ने बताया कि एक खास पत्ती (जिसे तमिल में 'वेलै पूनै काचि' कहते हैं) का प्रयोग सगर्भावस्था की पहचान के लिए किया जाता है। संदिग्ध-गर्भा स्त्री के मूत्र में इन पत्तियों को डालकर रात भर रखा जाता है। सबेरे उनमें सफेद धब्बे ढूंढे जाते हैं। यदि पत्तियों में सफेद धब्बे पड़ गये हों तो गर्भावस्था की संपुष्टि होती है। सिद्ध वैद्यों की राय में यह जांच विश्वसनीय है बशर्ते स्त्री को कोई (रतिज-रोग) न हो। दूसरी विधि यह है कि स्त्री को रात में सोने से पूर्व एक चम्मच शहद चटा दिया जाय। यदि सबेरे पेट के निचले हिस्से में बड़े जोर से दर्द के साथ उसकी नींद खुले तो समझें की स्त्री गर्भिणी है। ऐसी कतिपय जांचों का गहराई से अध्ययन-परीक्षण आवश्यक है।

सगर्भावस्था की पहचान की दूसरी अतिप्रचलित विधि गर्भनाड़ी के उपयोग की है। अधिकांश बूढ़ी दाइयां सगर्भावस्था की पहचान इस विधि से करती हैं। अनुभवी दाइयां ४०वें दिन से ही गर्भनाड़ी को खोज लेती हैं।

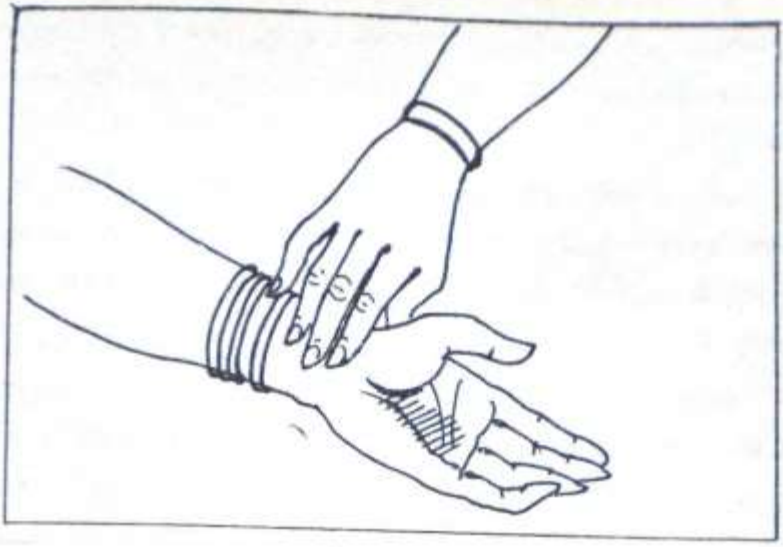

अपने सर्वेक्षण के परिणामों के उपसंहार के रूप में हम कह सकते हैं कि स्थानीय समुदायों में स्वास्थ्यकर्मियों का सगर्भावस्था की पहचान करने का ज्ञान बहुत अच्छा है और वे बगैर किसी बाहरी सहायता के सगर्भावस्था की पहचान कर लेते हैं।

लिंग निर्धारण

पिछली दशाब्दी में गर्भ के लिंग निर्धारण की कई आधुनिक तकनीकें उल्ब-वेधन (ऐम्नियोसेन्टेसिस) तथा पराध्वनिलेखन (अल्ट्रासोनोग्राफी) ईजाद हुई हैं। अजन्मे शिशु के लिंग निर्धारण के लिए भाचिप की अपनी व्यवस्थित विधियां रही हैं। इस संदर्भ में चरक का कथन है, *"सव्यांगचेष्टा पुरुषार्थ वे स्त्री स्त्रीस्वप्न पानाशन शील चेष्टा सव्याथगर्भा न च वृत्तगर्भा सव्य प्रोदुग्धा स्त्रियमेव सूते पुत्र त्वथो लिंग विपर्येव व्यामिश्रलिंगा प्रकृतिं तृतीयं"* अर्थात् जिस स्त्री को कामेच्छा अधिक हो, खाने के स्वप्न देखती हो या अधिक खाती हो, स्त्रीलिंगी नाम वाले पदार्थों का उपयोग अधिक करती हो, जनाना आदत और व्यवहार करती हो, जिसका गर्भाशय बायीं ओर स्थित हो या पेट गोल न हो, जिसके बायें स्तन में पहले दूध आ जाये, और जिसके शरीर का बायां भाग अधिक सक्रिय हो वह कन्या को जन्म देगी। जिस स्त्री में इसके विपरीत गुण हों वह पुत्र उत्पन्न करेगी (चरकसंहिता, शारीर ३/३४-३५)। सुश्रुत कहते हैं, *"तत्र यस्या दक्षिणे स्तने प्राक् पयोदर्शनं भवति.... प्रागभिहित लक्षणं च तस्या नपुंसकमिति विद्यात्"*

जिस गर्भवती स्त्री के दायें स्तन में पहले दूध प्रकट हो, जिसकी दायीं आँख भारी हो, जो स्त्री पहले दायां पैर आगे बढ़ाकर चले वह पुत्र उत्पन्न करती है (सुश्रुतसंहिता, शारीर ३/३२)।

आज भी ग्रामीण एवं जनजाति के लोग ऐसी ही विधियों से गर्भस्थ शिशु के लिंग का निर्णय करते हैं। इन विधियों की सावधानीपूर्वक परख करने के प्रयास लाभकारी हो सकते हैं। लोस्वापसंस सर्वेक्षण से निम्न प्रचलित विधियां प्रकाश में आयी हैं :-

मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और उड़ीसा में पेट में दायीं तरफ उभार पुत्र शिशु होने का प्रमाण माना जाता है। इसी प्रकार वाम अंग की गतिविधियों से कन्या शिशु का लक्षण समझा जाता है (पश्चिम बंगाल)। बायें स्तन में पहले दूध उतरना कन्या शिशु का लक्षण (उड़ीसा) और बायें स्तन का दाहिने की अपेक्षा बड़ा होना भी कन्या शिशु का लक्षण (पश्चिम बंगाल) माना जाता है। ये विश्वास आयुर्वेद-सम्मत हैं। कुछ अन्य विधियां भी प्रचलित हैं जिनकी छानबीन होनी चाहिए। जैसे अमावस्या के दिन गर्भधारण से पुत्र और पूर्णिमा के दिन गर्भधारण से कन्या उत्पन्न होती है (गुजरात)।

इच्छित संतान की प्राप्ति

आयुर्वेद के आचार्यों ने रजःस्राव के बाद शुद्ध होकर पुत्र या पुत्री की उत्पति के प्रयत्न में युग्म एवं अयुग्म दिनों में समागम की राय दी है। साथ ही विशिष्ट तिथियों यथा चतुर्थी, षष्ठी, दशमी एवं द्वादशी में पुत्र एवं पंचमी, सप्तमी, नवमी तथा एकादशी में गर्भाधान से कन्या उत्पत्ति का उल्लेख किया है। (सुश्रुतसंहिता शारीर स्थान /२/२८,३०)।

गर्भिणी परिचर्या : गर्भिणी स्त्री की देखभाल

प्रसूति तंत्र के संपूर्ण विषय में गर्भिणी परिचर्या या प्रसव-पूर्व देखभाल सर्वाधिक महत्व का पहलू है, क्योंकि अन्य सभी पहलू इस अवस्था पर निर्भर है। यदि गर्भिणी परिचर्या समुचित होगी तो गर्भ का विकास समुचित होगा, मां का स्वास्थ्य ठीक रहकर उसे प्रसव-वेदना सहने की शक्ति प्राप्त होगी, प्रसव ठीक होगा और प्रसवोत्तर-अवस्था उपद्रव रहित होगी। गर्भिणी की देखभाल संतान के स्वास्थ्य और गुणवत्ता में परिलक्षित होती है। अतएव आचार्यों ने विस्तृत एवं व्यवस्थित मासानुमासिक चर्या एवं विधिनिषेधों (करो और न करो) की सूची दी है जिनका परिपालन प्रसव-पूर्व अवस्था में आवश्यक है।

मोटे तौर पर गर्भिणी परिचर्या की चर्चा निम्न शीर्षकों के अंतर्गत की गयी है :-

(क) **मासानुमासिक पथ्य** : मास प्रति मास आहार एवं औषधचर्या

(ख) **गर्भस्थापक द्रव्य** : गर्भावस्था के लिए हितकर पदार्थ और

(ग) **गर्भोपघातकर भाव** : हानिकारक पदार्थ और गतिविधियां।

इन्हें गर्भ पर होने वाले प्रभावों के अनुसार निर्दिष्ट एवं निषिद्ध विविध खाद्य एवं गतिविधियों के रूप में भी सूचीबद्ध किया जा सकता है।

मासानुमासिक पथ्य : गर्भावस्था के उत्तरोत्तर महीनों में आहारचर्या

चूंकि भ्रूण का विकास सतत् चलता है इसलिए उसकी आहार और पोषण की आवश्यकताएं परिवर्तनशील रहती हैं। अतः मां की आवश्यकताएं भी परिवर्तनशील रहती हैं। इस परिवर्तनशीलता को दृष्टगत रख आचार्यों ने विस्तृत मासानुमासिक आहार-व्यवस्था दे रखी है।

इन निर्दिष्ट आहार-नियमों का पालन करके गर्भिणी, गर्भ का सामान्य विकास सुनिश्चित कर, स्वयं स्वस्थ रहने के साथ-साथ स्वस्थ, ओजस्वी, शक्ति, रूप एवं सुस्वर सम्पन्न शिशु को जन्म देती है। बिल्कुल पहले महीने से लेकर नवें महीने तक के लिए आहार-व्यवस्था का परामर्श दिया गया है। इस मासानुमासिक पथ्य के परिपालन से निम्न लाभ होंगे :-

१. अपस, श्रोणि, कटि, वक्ष के पार्श्व और पीठ का शिथिलन।

२. वात की अधोगति (वातानुलोमन) - प्रसव के समय गर्भ के निर्गमन के लिए यह आवश्यक है।

३. मल एवं मूत्र का सामान्य रहना एवं सहज निष्कासन।

४. त्वचा एवं नाखूनों का मृदुकरण।

५. बल एवं वर्ण में वृद्धि।

६. सही समय पर स्वस्थ एवं सद्गुण संपन्न शिशु का सुख-प्रसव।

मासानुमासिक निर्दिष्ट आहार एवं चर्या

प्रथम मास

गर्भ रहने की शंका होते ही मां को अपनी पाचन-क्षमता और शक्ति के अनुसार ठंडा दूध लेना चाहिए। सुबह शाम अनुकूल आहार लेना चाहिए। मां की तेल-मालिश की जानी चाहिए लेकिन उबटन का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उबटन का प्रयोग दोषों को द्रव बना देगा (चरकसंहिता, शारीर ८/३२, सुश्रुत शारीर ३/३)।

द्वितीय मास

द्वितीय मास में गर्भिणी को मधुर औषधों से प्रसंस्कृत दूध एवं ठंडे एवं मधुर आहार देने चाहिए (चरकसंहिता, शारीर ८/३२, सुश्रुतसंहिता, शारीर १०/३)।

तृतीय मास

तृतीय मास में उसे शहद और घी के साथ दूध लेना चाहिए। साथ ही दूध में पकी हुई साठी चावल की खीर भी लेना चाहिए।

गर्भावस्था के प्रथम तीन मास में गर्भ तरल/अवलेह रूप में रहता है अतः स्त्री को तरल या द्रव आहार अधिकतम देना चाहिए। साथ ही इन्हीं तीन महीनों में

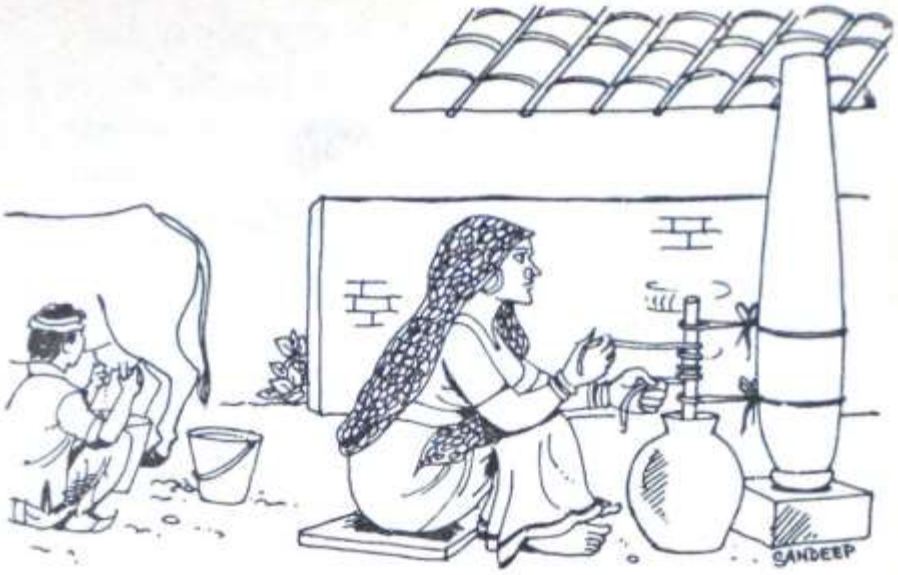

अधिकतम पिंड निर्मित होता है जिसके लिए मधुर एवं शीतवीर्य पदार्थ देने चाहिए जो कि कोशिकामय पिंड के निर्माण और वृद्धि में सहायक होते हैं।

चतुर्थ मास

दूध से निकाला हुआ (न कि दही से) मक्खन, एक अक्ष (लगभग १० ग्राम) की मात्रा में अथवा १० ग्राम मक्खन सहित दूध देना चाहिए (चरकसंहिता, शारीर ५/३२)। चौथे महीने में गर्भिणी को दही के साथ साठी चावल का भात, दूध, मक्खन और वन्य पशुओं का मांस आदि प्रिय आहार देना चाहिए। इस महीने में अंगों का दृढ़ीभवन और विकास होता है। अतः इस मास में ठोस आहार की आवश्यकता होने से ठोस आहार का निर्देश दिया गया है।

पंचम मास

दूध से निकाले हुए मक्खन का घी और चतुर्थ मास में बताये गये खाद्य देने चाहिए। अंतर इतना ही कि इस मास में मक्खन की जगह दूध के साथ घी देते हैं।

षष्टम मास

छठे मास में मधुरगण की औषधियों (जैसे काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, गुडूची, द्राक्षा आदि) से प्रसंस्कृत घी अथवा गोखुरू से प्रसंस्कृत चावल की दलिया देनी

चाहिए। गर्भावस्था के इस मुकाम पर कभी-कभी पेशाब रुक जाती है। इस स्थिति में मधुरगण की औषधियां और गोखरू मूत्रवर्धक सिद्ध होंगी।

सप्तम मास

इस महीने में छठे मास में बताये गये आहार के अतिरिक्त पृथुक पर्ण्यादि (विदारीकन्द आदि) वर्ग की औषधियों से प्रसंस्कृत घी देना चाहिए। इससे गर्भ के समुचित विकास में सहायता मिलेगी।

अष्टम मास

अष्टम मास का आहार और चर्या बताने से पूर्व प्रसव की प्रक्रिया में वात की भूमिका और उसे सामान्य बनाये रखने के महत्व की चर्चा अप्रासंगिक न होगी। हम देखते हैं कि निर्दिष्ट आहार और चर्या वात-नियामक प्रकृति के हैं, विशेष रूप से अपान वायु के। अपानवायु के कर्म हैं *"वातविण्मूत्रशुक्रार्तवगर्भ निष्क्रमणादि क्रियाः"* अर्थात् मल-मूत्र-वायु-वीर्य-आर्तव (मासिक धर्म) को निकालना तथा गर्भ का प्रसव कराना (अष्टांगसंग्रह सूत्र २०/४)। अतः प्रसव सामान्य रीति से हो इसके लिए वात को सामान्य बनाये रखना अत्यावश्यक है और इसी कारण से हम देखते हैं कि गर्भावस्था के अंतिम कुछ मासों में वात को प्रकुपित न होने देने के लिए सभी संभव उपाय किये जाते हैं।

जैसा कि पूर्व में बताया गया है गर्भ के प्रसव में वात की भूमिका महत्वपूर्ण है अतः उसे बनाये रखने का प्रयास किया जाता है। इसी दृष्टि से आठवें महीने में औषधियुक्त बस्ति दी जाती है। बस्ति पंचकर्म का एक प्रकार है और पंचकर्म निराकरणकारी चिकित्सा है। मोटे तौर पर बस्ति दो प्रकार की होती है, अनुवासन बस्ति (स्निग्ध बस्ति) और आस्थापन बस्ति (संशोधक बस्ति)। प्रकुपित वात को निकालने के लिए प्रायः बस्ति का प्रयोग किया जाता है। अनुवासन बस्ति या स्नेह बस्ति और आस्थापन बस्ति या निरुह बस्ति में अंतर एनीमा तैयार करने में प्रयुक्त कषायों और और तेलों के अनुपात–भेद के कारण है। अनुवासन में कषाय का अनुपात कम होता है और आस्थापन में तेल का अनुपात कम होता है।

सुश्रुत का परामर्श है कि पहले बेर, बला, अतिबला, शतपुष्पा, पलाल (तिल के बीजों की पिष्टि), दूध, दही, का तोड़, तेल, नमक, मदनफल, शहद और घी के काढ़े के साथ आस्थापन बस्ति (कषाय जैसे अस्निग्ध पदार्थों से औषधीकृत एनीमा) देकर तत्पश्चात् दूध तथा मधुरगण की औषधियों के काढ़े से औषधीकृत तेलों से अनुवासन बस्ति (औषधीकृत स्निग्ध गुदबस्ति) दी जाय। इससे ठहरे हुए मलों के निष्कासन और वातानुलोमन (अधोगति द्वारा वात के नियमन) में सहायता मिलेगी।

नवम मास

गर्भिणी को मधुर वर्ग की औषधियों से प्रसंस्कृत तेल से अनुवासन बस्ति देनी चाहिए और योनि में उसी तेल का पिचु (फाहा) रखना चाहिए। इससे गर्भाशय और प्रसव – मार्ग का स्नेहन होता है। वातहर औषधों के ठंडे काढ़े से नित्य स्नान करने का परामर्श भी दिया गया है। मांस रस और चिकनाई के साथ भात या प्रचुर चिकनाई के साथ चावल की दलिया आहार के रूप में देना चाहिए। जितने विस्तार से गर्भिणी की मासनुमासिक परिचर्या का विवरण आचार्यों ने दिया है, उस तरह की समझ आधुनिक विज्ञान में भी नहीं है। स्थानीय स्वास्थ्य परंपराओं में भी यह ज्ञान इतने विशद्रूप में विद्यमान नहीं है पर अलग–अलग लोक परंपराओं में इस ज्ञान के कुछ अंश अवश्य पाए जाते हैं। बंबई के पोद्दार आयुर्वेदिक अस्पताल की वैद्या एस. कोपिकर ने मासानुमासिक चर्या का पालन करने वाली स्त्रियों पर एक विस्तृत अध्ययन में पाया कि ऐसी स्त्रियों में गर्भ न केवल औसत से अधिक स्वस्थ होता है वरन् उनमें प्रसव भी अपेक्षतया आसानी से होता है।

गर्भस्थापक औषधि–गर्भावस्था में हितकर पदार्थ

गर्भस्थापक द्रव्य गर्भोपघातकर भावों के प्रभावों को निरस्त करते हैं और गर्भ की समुचित देखभाल में सहायक होते हैं। ये गर्भस्राव के उपचार और रोकथाम के काम भी आ सकते हैं। इनका प्रयोग नित्य किया जाना चाहिए। क्योंकि ये माता और गर्भ के समुचित स्वास्थ्य तथा वृद्धि और विकास के लिए हितकर हैं।

ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतावरी, दूर्वा आदि को गर्भस्थापक औषधियां बताया गया है। इन्हें दूध और घी के साथ पकाकर खाना चाहिए। पुष्य नक्षत्र में इन औषधों के ठंडे काढ़े से गर्भिणी को नहलाना चाहिए। इन औषधों को मां के निकट संपर्क में रखना चाहिए। एतदर्थ इनका तावीज बनाकर दाहिनी भुजा पर बांधना या सिर पर रखना चाहिए। इसी प्रकार जीवनीय गण की औषधियों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

आचार्य चरक ने ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतवीर्या (दूर्वा भेद), अमोघा (पाटला, अमोघा या लक्ष्मणा), अव्यथा (कदली, गुडूची, हरीतकी), शिवा, अरिष्टा (कटुरोहिणी) तथा बिल्व व सेनकान्ता (प्रियंगु) ये दस औषधियां प्रजास्थापन बतायी हैं।

गर्भोपघातकर भाव

ये गर्भ के लिए हानिकार आहार–विहार हैं। इनसे शिशु में जन्मजात विकृतियां उत्पन्न हो सकती हैं और ये स्वस्थ और सद्गुणसंपन्न शिशु के जन्म

के लिए हितकर नहीं हैं। इन्हें आहार और विहार इन दो शीर्षकों के अंतर्गत पृथक किया जा सकता है।

गर्भावस्था में हानिकारक आहार

गर्भिणी को शराब तथा मांसाहार (अति), उष्ण (गरम), तीक्ष्ण (तेज), कटु (कड़ुए) और विष्टंभि (भारी और पचने में कठिन) पदार्थों के सेवन से बचना चाहिए (चरकसंहिता, शारीर ४/१८), (सुश्रुतसंहिता, शारीर ३/१२) या (अष्टांग हृदय शारीर १/४४-४७)।

विहार (गर्भावस्था में हानिकारक व्यवहार और क्रिया कलाप)

गर्भिणी स्त्री को कठिन व्यायाम और संभोग (दोनों की अति) से बचना चाहिए। उसे कठोरता और जल्दबाजी के कामों को नहीं करना चाहिए। उसे ऊंची - नीची सड़कों पर किसी भी सवारी से आना जाना नहीं चाहिए (चरकसंहिता, शारीर ४/१८)। सुश्रुत के अनुसार गर्भिणी को संभोग, व्यायाम, अति संतर्पण (भरपेट खाना या गरिष्ठ आहार लेना), स्वप्न विपर्यय (दिन में सोना, रात में जागना) और उत्कटासन (पालथी मारकर बैठना या पांव के तलवों को जमीन पर रखकर पुट्ठों पर बैठना) में बैठना बिल्कुल बंद कर देना चाहिए। उसे मल मूत्रादि के वेगों को रोकना नहीं चाहिए और स्नेहन और रक्तमोक्षण नहीं कराना चाहिए।

उसे सदैव प्रसन्नचित रहना चाहिए। उसे कभी भी अप्रिय वस्तुओं और कुरूप व्यक्तियों (शारीरिक विकारयुक्त) को देखना तक नहीं चाहिए। उसे डरावनी चीजें नहीं देखनी चाहिए और भड़काऊ तथा डरावनी कहानियां नहीं सुननी चाहिए। कहा गया है कि गर्भिणी की मानसिक अवस्था, गर्भावस्था को तथा आगे जन्म लेने वाले शिशु को भी प्रभावित कर सकती है। इसलिए धर्मशास्त्रों के श्रवण पर जोर दिया गया है। किन्ही परिवारों में सुंदरकांड अथवा भागवत के दशम स्कन्ध के नियमित पारायण की प्रथा है। गर्भिणी को ऊंची आवाज में बोलना नहीं चाहिए और ऐसे विचारों से बचना चाहिए जिससे उसके मन में क्रोध या भय उत्पन्न हो। ये सभी शारीरिक और मानसिक गतिविधियां गर्भ को हानि पहुंचायेंगी (सुश्रुतसंहिता, शारीर १०/२)।

वाग्भट्ट ने कहा है कि गर्भिणी को तेज धूप में देर तक रहने और गहरे गड्ढों या कुओं में झांकने से बचना चाहिए। (अष्टांग संग्रह, शारीर ३/३)। हारीत उन्हें घुइयां, प्याज, लहसुन आदि विदाहि और मलावरोधकारी सब्जियों से परहेज रखने का परामर्श देते हैं (हा.सं. ३/४९)। योगरत्नाकर ने उन्हें क्षारीय पदार्थों एवं प्रदूषित पदार्थों तथा विरुद्धाहार* से बचने तथा वमन और स्वेदन को उनके लिए निषिद्ध बताया है (यो.र. क्षीर दोष चिकित्सा)।

विभिन्न गर्भोपघातकर भावों के निम्न प्रभाव बतलाये गये हैं :- पाल्थी मारकर बैठने या असामान्य आसनों में बैठने, मल-मूत्र-अपानवायु के वेगों को रोकने, तीक्ष्ण और उष्ण आहार लेने तथा आयास के काम करने से गर्भ-मृत्यु, समयपूर्व प्रसव या गर्भपात हो सकता है। हाथ-पैर फैलाकर उत्तान लेटने से गले में नाभि-नाल लिपट सकती है। रति की अति से विकलांग, उद्दंड अथवा आलसी शिशु की उत्पत्ति होगी। गर्भावस्था में अतिनिद्रा से शिशु उनींदा, अज्ञानी एवं मंदाग्नि का शिकार होगा। मदिरा अथवा अन्य नशीले पदार्थों के नियमित सेवन से कमजोर स्मरणशक्ति वाली और अस्थिरचित्त संतान होगी। षड्सों में से किसी एक रस के अति सेवन से क्रमशः मूत्ररोग, चर्म एवं नेत्र विकार, अकाल वृद्धता, प्रजनन-अक्षमता, दुर्बलता और उदरवायु तथा डकार होते हैं। (चरकसंहिता, शारीर ८/२१ तथा अ.सं., शा. २/६१)।

---

* *विरुद्धाहार के विस्तृत विवरण के लिए पाठक लोस्वापससं महानिबंध - २, 'आहार और पोषण के आयुर्वेदीय सिद्धान्त' के आठवें अध्याय का प्रथम खंड देखें।*

दौहदय

गर्भिणी स्त्रियों में, चाहे वे संसार के किसी भी देश और संस्कार की हों, अक्सर गर्भावस्था के दर्म्यान अजीबोगरीब पसंद-नापसंद पायी जाती है। यह पसंद और नापसंद सगर्भावस्था की स्थिति के अनुसार होती है और हर स्त्री के लिए अलग-अलग होती है। इनमें से कुछ इच्छाएं बड़ी दृढ़ होती हैं। इन पसंदों और नापसंदों की खासियत यह है कि वही स्त्री जब गर्भवती नहीं रहती है तब की उसकी पसंद और नापसंद से गर्भावस्था की पसंद-नापसंद में बड़ा अंतर रहता है। यद्यपि इन लक्षणों का उल्लेख और वर्णन प्राप्त होता है, पर इसके कारण की वास्तविक समझ का अभाव है।

इन विविध इच्छाओं की विशेष समझ आयुर्वेद मे वर्णित है जो इसे दौहदय अवस्था में परिगणित करता है। दौहदय के प्रकटीकरण का कारण गर्भ में दूसरे हृदय की उपस्थिति है। इस प्रकार गर्भिणी में दो हृदय होते हैं, एक उसका

---

* *यहां 'हृदय' का तात्पर्य खोखले मांसल शंक्वाकार हृदय नामक अंग से नहीं है। यह बुद्धि, उसके विषयों, संवेदन - क्षमताओं, पांचों इंद्रियों के विषयों, चेतना तथा आत्मा और उसके आनंदादि गुणों का अधिष्ठान है (चरकसंहिता, सूत्र ३०/३-४)। अतः गर्भ में हृदय की उपस्थिति का मतलब केवल हृदय अंग का बनना ही नहीं है बल्कि व्यक्तिगत चेतना, उसकी अपनी पसंद और नापसंद है जो चौथे महीने में चेतना के प्रवेश के बाद प्रकट होते हैं*

अपना और दूसरा गर्भ का। उसे दौहृदिनी कहते हैं। जब गर्भ चार महीने पूरे कर लेता है तो उसमें चेतना प्रवेश कर जाती है और फिर उसमें व्यक्तिगत इच्छाएं जागने लगती हैं जो मां की पसंद-नापसंद के साथ विरोधाभास उत्पन्न करती हैं। यह वह अनोखी संकल्पना है जो गर्भवती द्वारा अचानक प्रकटीकृत असामान्य पसंद-नापसंद की व्याख्या करती हैं। कहा जाता है कि गर्भवती स्त्री की इच्छाओं से गर्भस्थ शिशु के लिंग का निर्धारण किया जा सकता है क्योंकि ये इच्छाएं अजन्मे शिशु के लिंग पर निर्भर हैं।

हमारे आचार्यों के अनुसार गर्भ चार मास तक बढ़ता है और पांचवें महीने में उसमें चेतना या जीव का प्रवेश होता है और इसके परिणामस्वरूप मां की इच्छाएं सामने आती हैं। इन इच्छाओं और लालसाओं की पूर्ति होनी चाहिए। ऐसा न करने से गर्भ में बौनापन जैसी असामान्यताएं उत्पन्न हो सकती हैं। ये इच्छाएं सदा स्वस्थ नहीं होतीं और उनकी पूर्ति से हानि भी हो सकती है। ऐसी स्थितियों में 'युक्ति' या हिकमत से काम लेना चाहिए जिससे गर्भिणी की इच्छा पूरी भी हो जाए और साथ ही कोई हानि भी न हो।

१. यदि गर्भिणी को कच्चा आम और नमक खाने के प्रवृत्ति अधिक हो तो उसे सेंधा नमक और आंवला खाने को दें।

२. यदि उसे अचार जैसी गरम और तीखी चीजें खाने का शौक हों तो उसे नींबू का रस और अदरक दें।

३. कोयला और राख खाने की इच्छा होने पर उसे जला हुआ आंवला अकेले या हरड़ और बहेड़े के साथ दिया जा सकता है।

४. मिट्टी, कीचड़ या ईंट खाने की इच्छा में गेरू को घी में तलकर दिया जा सकता है।

मां की इच्छाएं शिशु के चरित्र को प्रतिबिंबित भी करती हैं। यदि स्त्री राजा का दर्शन करना चाहे तो उसका पुत्र समृद्ध होगा, इत्यादि।

इन्द्रयार्थास्तु यान् यान् सा इच्छति गर्भिणी। गर्भाबाधा भयाद् तांस्तान् भिषगाहृत्य दापयेत्।। सा प्राप्तदौहृदा पुत्रं जनयेत् गुणान्वितम्। अलब्धा दोहृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयं।। येषु येषु इन्द्रियार्थेषु दौहृदे वा विमानना। प्रजायेत सुतस्यार्तिस्तथेन्द्रिये।

वैद्य (जो मां और गर्भ का भला चाहता है) मां की पंच इंद्रियों से संबंधित प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करे। यह इसलिए कि जिस स्त्री के दौहदय की पूर्ति होती है वह स्वस्थ शिशु को जन्म देती है और यदि उसकी पूर्ति नहीं होती तो या तो स्त्री या उसके शिशु के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ेगा। गर्भावस्था के दर्म्यान जिन इन्द्रियों की तृप्ति नहीं होगी शिशु के उन इन्द्रियों में विकार अथवा असामान्यता (कायिक अथवा क्रियात्मक) उत्पन्न होगी (सुश्रुतसंहिता, शारीर ३/१६-१८)।

स्थानीय परंपराएं

ग्रामीण क्षेत्रों में (जनजाति के क्षेत्रों में भी) अनेक व्यवहार प्रचलित हैं जिनके तर्काधार आयुर्वेद में उपलब्ध हैं। गर्भावस्था के दर्म्यान पालन की जाने वाली कुछ प्रथाएं अतिशय महत्व की हैं। इनमें से कतिपय, जो आज भी व्यवहृत हैं, नीचे सूचीबद्ध की जा रही हैं।

बंगाल में गर्भावस्था के अंतिम चंद महीनों के दर्म्यान संभोग को हतोत्साहित किया जाता है। कारण यह बताया जाता है कि इससे गर्भ को हानि पहुंच सकती है (७)। अन्यत्र भी ऐसी प्रथा प्रचलित है। कहीं - कहीं सुनने को मिला कि गर्भावस्था के उत्तर काल में संभोग इसलिए वर्जित है कि "चूंकि शिशु का शरीर निर्मित हो चुका है अतः ऐसी स्थिति में संभोग अगम्यागमन के बराबर होगा।" जैसा कि हम ऊपर बता आये हैं, यह प्रथा उपयुक्त है और आचार्यों ने गर्भावस्था के दर्म्यान संभोग को वर्जित कर रखा है।

महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु से सूचना मिली है कि उक्त प्रदेशों में गर्भवती को दैनिक घरेलू कार्य करने दिया जाता है पर उसे भारी वस्तुओं को उठाने और दौड़ने से मनाही रहती है (८)। गर्भवती के लिए अति कठिन कार्य वर्जित है क्यों कि उससे गर्भस्राव या अन्य पेचीदगियां पैदा हो सकती हैं। काम से बिल्कुल हाथ खींच लेना भी ठीक नहीं क्योंकि उससे संतान सुस्त और काहिल होगी। इसलिए हल्के घरेलू काम में लगे रहना उत्तम होगा जो कि एक ओर कठोर परिश्रम भी न होगा और उसे व्यस्त भी रखेगा।

चित लेटना, कुएं से पानी खींचना और गड्ढों तथा कुओं में झांकना भी वर्जित है। ये बाते अस्वास्थ्यकर हैं और इनके पीछे तर्काधार भी है। पीठ के बल या उत्तान लेटने से गर्भ के गले में नाभि-नाल लिपट सकती है और कुएं से पानी खींच लाने में अति परिश्रम और फिसलने की आशंका रहती है और दोनों बातें गर्भिणी एवं गर्भ के लिए अहितकर हैं। यही कारण है कि उन्हें गड्ढों और कुओं में झांकने से मना किया जाता है क्योंकि उनका शरीर नाजुक होता है और उन्हें चक्कर आ सकता है जिससे वे गड्ढे या कुएं में गिर सकती हैं।

आहार विषयक प्रतिबन्धों का पालन भी कठोरता पूर्वक किया जाता है। अनेक आधुनिक जांचकर्ताओं को ये विधि-निषेध बोधगम्य नहीं प्रतीत होंगे। विविध विधि-निषेधों में से कुछ यहां गिनाये जा रहे हैं। एक बुनियादी परामर्श यह है कि गर्भवती को ज्यादा मात्रा में खाना न दें और न ही पौष्टिक पदार्थ अधिक

मात्रा में दें। इसका कारण यह है कि ऐसा न करने पर गर्भ बहुत हृष्ट-पुष्ट होगा जिससे प्रसव में कठिनाई होगी। यह प्रथा बंगला देश (७) और तमिलनाडु (८) में प्रचलित है। आयुर्वेद में गर्भावस्था में अभिसन्तर्पण का निषेध है, अतः उक्त प्रथा ठीक है।

सगर्भावस्था के दर्म्यान अनेक खाद्य पदार्थों से बचना चहिए। आन्ध्र प्रदेश में किये गये सर्वेक्षण (९) से ज्ञात हुआ है कि कद्दू, केला, बैंगन, अमरूद और पपीता गर्भवती के लिए वर्ज्य है। इन्हें अति उष्ण माना गया है। इनके सेवन से गर्भिणी को गर्भस्राव हो सकता है या उसे इन्हें पचाना मुश्किल हो सकता है। आंध्र प्रदेश में किये गये एक अन्य अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि गर्भवती को अण्डे नहीं देने चाहिए। शास्त्र दृष्टि से अण्डा 'गुरु' और 'आम' रूप है जिससे अपच और आम का निर्माण हो सकता है। इसके परिणामस्वरूप आमज गर्भ-स्राव हो सकता है। कुछ विद्धानों के मत से यदि गर्भिणी की पाचन शक्ति अच्छी हो तो उसे अंडा दिया जा सकता है क्यों 'गर्भमामगर्भेण'इस सिद्धांत के अनुसार गर्भ का पोषण तत्सम अन्य पदार्थों से संभव है। मोटे तौर पर ये प्रथाएं ठीक और आयुर्वेद सम्मत भी हैं।

गर्भिणी व्याधियाँ और चिकित्सा

गर्भवती स्त्री के कायिक एवं क्रिया शारीरिक विकार सामान्य लोगों जैसे ही होते हैं क्योंकि शरीर के दोष और दूष्य वही रहते हैं। फिर भी औषध-व्यवस्था में कुछ भिन्नता होती है क्योंकि तीक्ष्ण, कटु उवं तीव्र औषधियां गर्भ को हानि पहुंचाएंगी। अतः सगर्भावस्था काल में होने वाले उपद्रवों के लिए औषधियों का चयन सीमित होता है। ये औषध मृदु, शीत, मधुर और हृद्य होने चाहिए। परन्तु जब मां का जीवन खतरे में हो तब उग्र उपायों और तीव्र औषधों का प्रयोग करके भी मां का जीवन बचा लेना चाहिए भले ही ऐसा करने में गर्भ की हानि हो जाय (अ.सं. शा.२१६२-६३)। यदि रोग उत्कट है और या गंभीर है तो पहले वामक आषधि देकर बाद में अनुलोमक औषधों के साथ मधुर एवं खट्टे पदार्थ देने चाहिए। सभी शामक औषधियाँ मृदु होनी चाहिए और उन्हें आहार या पेय के साथ देना चाहिए। संक्षेप में, चरक के अनुसार, गर्भिणी की उसी प्रकार सावधानी के साथ देखभाल करनी चाहिए जैसी कि तेल से भरे लोटे को बगैर छलका ले जाने में करनी पड़ती है। जिस प्रकार जरा से स्पंदन से तेल छलक पड़ेगा, उसी प्रकार थोड़ी सी उत्तेजना भी गर्भवती स्त्री के लिए गर्भस्राव जैसी परेशानियाँ पैदा कर

सकती है (च. सं., शा. ८१२२)। उपरोक्त विवरण से फिर यह स्पष्ट होता है पारंपरिक चिकित्सकों की रोगोपचार की समझ कितनी पैनी थी। उनके अनुसार गर्भवती स्त्री की चिकित्सा रोग की गंभीरता और उसे कितने महीने का गर्भ है इस पर निर्भर करती है।

गर्भावस्था की समस्याएं और उनके उपचार

१. बदन दर्द और जोड़ों का दर्द
२. चक्कर
३. कमजोरी (पांडुरोग रक्ताल्पता)
४. मतली, उल्टी (गर्भजवमन)
५. सूजन–शोथ
६. रतौंधी
७. धुंधली दृष्टि
८. क्रिमि
९. बवासीर (अर्श)
१० कब्ज
११. अतिसार
१२. बुखार
१३. पीलिया
१४. खसरा
१५. योनि में खुजली
१६. योनिगत स्राव की अति (सफेद/लाल)
१७. पेशाब में जलन
१८. मरोड़
१९. पेट में दर्द
२०. सिरदर्द
२१ अनिद्रा
२२ किक्किस (स्ट्राई ग्रैविडेरम)

हमने यहां उन सामान्य अवस्थाओं और रोगों की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जो गर्भावस्था की विभिन्न अवस्थाओं में जाये जाते है। हमने उनके कारण, उपचार और रोकथाम के उपाय बताने के प्रयास भी किये है।

गर्भवती स्त्रियों को सामान्य व्याधियों में देय उपचार*

१. बदन दर्द / जोड़ों का दर्द

इसमें धन्वन्तरि तैल, सहचरादि तैल, विषगर्भ अथवा अन्य किसी वातहर तेल की मालिश करनी चाहिए।

२. चक्कर

इसमें शतावर का स्वरस लाभकारी है। पर यह आवश्यक है कि चक्कर के मूल कारण की खोज करने के बाद उपचार किया जाय क्योंकि यह पांडु, सार्वदैहिक कमजोरी, विषरक्त आदि अनेक कारणों से भी हो सकता है। उस स्थिति में रोगी की व्यवस्था रोग के अनुसार करनी होगी।

३.पांडुरोग

गर्भावस्था के दर्म्यान होने वाले मुख्य विकारों में पाण्डु या रक्ताल्पता (एनीमिया) एक गंभीर विकार है। आयुर्वेदिक आचार्यों ने इस स्थिति की गंभीरता को समझ कर उचित औषध-व्यवस्था की है, जिससे कोई पार्श्व प्रभाव न उत्पन्न हो, जो कि फेरस सल्फेट और फोलिक ऐसिड के रूप में लौहपूरक देने पर प्रायः देखने में आते है। यह लौहपूरक कई गर्भवती स्त्रियों को अक्सर अनुकूल नहीं पड़ता क्योंकि इससे उनमें वमन की प्रवृत्ति,मतली और कब्ज की वृद्धि हो जाती है। ऐसी प्रतिक्रियाओं से बचाव के लिए लौहपूरक का रूप ऐसा होना चाहिए कि गर्भवती के शरीर के अत्यधिक अनुकूल हो, साथ ही अन्य दवाएं भी दी जायें जिनसे ऐसी प्रतिक्रियाएं नियंत्रित रह सकें। ऐसे कुछ योग यहां प्रस्तुत हैं जिनका साधारणतया उपयोग किया जा सकता है।

(क) द्राक्षारिष्ट के साथ लोहासव (द्राक्षारिष्ट मृदु रेचक है)।

(ख) धात्री लौह- इसमें आंवले की मात्रा प्रचुर होती है, जो मतली और कब्ज को नियंत्रित करता है। इसमें कुछ मात्रा में यष्टिमधु (मुलेठी)

---

* *यहां बताये गये उपचार आलेंदि में संपन्न सम्मेलन में वैद्यों द्वारा निर्दिष्ट हैं (देखें संलग्नक -२)। किसी भी समस्या के उत्पन्न होने पर पाठक कुशल वैद्य से परामर्श प्राप्त करें। कृपया इसे उपचार की हस्तपुस्तक मान कर न चलें।*

और गुडूची भी होती है, पुनर्नवा मूत्रल है जो मूत्रावरोध और सूजन को रोकने में मदद करती है। विशेष रूप से दूसरे तथा तीसरे त्रिमास के अंत में ये शिकायतें गर्भिणी स्त्रियों में प्रायः पायी जाती हैं।

(ग) **पुनर्नवा मंडूर** – पुनर्नवा मूत्रल होने के कारण शरीर में मूत्र की मात्रा कम करता है अतः गर्भिणी में दूसरे या तीसरे त्रैमासिक में अक्सर पाए जाने वाले शोथ को भी कम करता है।

४. मतली और वमन

सभी ग्रंथों में अति लालास्राव और मतली आदि को सामान्य सगर्भावस्था का लक्षण बताया गया है। सुश्रुत ने छर्दिरोग (उल्टी) का निदान बताते हुए इसके कारणों में गर्भावस्था को भी गिनाया है। मधुकोष टीकाकार का कहना है कि गर्भ वायु को ऊपर की ओर ढकेलता है जिससे वायु क्षुब्ध होकर उल्टी उत्पन्न करती है।

गर्भज छर्दिरोग के तीन विशिष्ट कारण हैं

(क) वात वैगुण्य

(ख) दौहृद–अवमानना या दौहृदय की उपेक्षा

(ग) गर्भनिमित्त या गर्भ के कारण।

इसमें शहद के साथ धान का लावा देना चाहिए क्योंकि यह सर्वोत्कृष्ट वमनरोधी है। साथ ही ध्यान रहे कि वमन के कारण की जांच होनी चाहिए क्योंकि वमन किसी अन्य रोग का लक्षण भी हो सकता है।

५. शोफ (सूजन/शोथ)

यह भी गर्भिणी को होने वाली आम शिकायत है। इसका उपचार दोहरा है **मुख से दी जाने वाली औषधि** : वर्षाभू (पुनर्नवा) की जड़ के क्वाथ में देवदारु और मूर्वा (मार्डेन्सिया टिनैसिसिमा) की चटनी मिलाकर अथवा केवल देवदारु और शहद दिया जा सकता है।

वाह्य लेपन हेतु : गुनगुने पानी से सेंक करें। चंदन, मुलेठी, खस, मागपुष्प, तिल, अजश्रिंग, मंजिष्ठा, रावी एवं पुनर्नवा की जड़ को पीसकर बनाया गया लेप लाभकारी होता है।

६. रतौंधी

अगस्त्य (अगाथी ग्रैण्डी फ्लोरा) के फूल दिये जा सकते हैं। साथ ही पुष्टाहार भी दिया जाना चाहिए।

७. आंखों का धुंधलापन

यह प्रायः पाण्डु की स्थिति में गौण लक्षण के रूप में होता है और इसमें पाण्डु की चिकित्सा करनी चाहिए। लौह का कोई योग भी देना चाहिए।

८. क्रिमि

इसमें ३ ग्राम वायविडंग को शहद के साथ देना चाहिए। गर्भिणी स्त्रियों को क्रिमि प्रायः मिट्टी या राख आदि खाने की दौहृदय इच्छा के कारण हो जाता है।

९. बवासीर

गर्भिणी स्त्रियों को होने वाले बवासीर का कारण, संभव है, बिना इलाज किया हुआ कब्ज हो। ऐसे में अभयारिष्ट और दन्त्यारिष्ट जैसी दवाएं दी जानी चाहिए। यदि कब्ज का कारण है तो उसकी चिकित्सा की जानी चाहिए। सिद्ध वैद्य इसमें घोंघे के खोल और मांस से बनी नतइ ओडु भस्म् या नतइ करि लेह्य देते हैं।

१०. कब्ज

कब्ज गर्भिणियों को प्रायः रहने वाली शिकायत है। यदि कब्ज हल्का है तो इसमें अंगूर और गुलाब की सूखी कलियां देना चाहिए। यदि कब्ज गर्भावस्था के आठवें मास में होने वाले उदावर्त* के कारण है और अनुवासन बस्ति (मधुरगण-औषधों से सिद्ध तैलों से दी जाने वाली) अथवा वातहर एवं चिकनाईदार पदार्थों के सेवन से भी नहीं ठीक होता तो उसे असाध्य समझना चाहिए। उपचार की अगली कड़ी के रूप में निरुह बस्ति दी जाती है। ऐसे में किसी सिद्ध चिकित्सक से

---

* *उदावर्त वातरोग का एक प्रकार है, जिसमें वायु, मल और मूत्र की गतिविधि ऊपर की ओर होती है (जबकि सामान्य स्थिति में इनकी गतिविधि नीचे की ओर होती है)। ऐसा प्रतिलोम (उल्टी दिशा में चलने वाली) वात के कारण होता है जो प्रायः वेग धारण (वेगों को रोकने) के कारण होता है।*

६. रतौंधी

अगस्त्य (अगाथी ग्रैण्डी फ्लोरा) के फूल दिये जा सकते हैं। साथ ही पुष्टाहार भी दिया जाना चाहिए।

७. आंखों का धुंधलापन

यह प्रायः पाण्डु की स्थिति में गौण लक्षण के रूप में होता है और इसमें पाण्डु की चिकित्सा करनी चाहिए। लौह का कोई योग भी देना चाहिए।

८. क्रिमि

इसमें ३ ग्राम वायविडंग को शहद के साथ देना चाहिए। गर्भिणी स्त्रियों को क्रिमि प्रायः मिट्टी या राख आदि खाने की दौहृदय इच्छा के कारण हो जाता है।

९. बवासीर

गर्भिणी स्त्रियों को होने वाले बवासीर का कारण, संभव है, बिना इलाज किया हुआ कब्ज हो। ऐसे में अभयारिष्ट और दन्त्यारिष्ट जैसी दवाएं दी जानी चाहिए। यदि कब्ज का कारण है तो उसकी चिकित्सा की जानी चाहिए। सिद्ध वैद्य इसमें घोंघे के खोल और मांस से बनी नतइ ओडु भस्म् या नतइ करि लेह्य देते हैं।

१०. कब्ज

कब्ज गर्भिणियों को प्रायः रहने वाली शिकायत है। यदि कब्ज हल्का है तो इसमें अंगूर और गुलाब की सूखी कलियां देना चाहिए। यदि कब्ज गर्भावस्था के आठवें मास में होने वाले उदावर्त* के कारण है और अनुवासन बस्ति (मधुरगण–औषधों से सिद्ध तैलों से दी जाने वाली) अथवा वातहर एवं चिकनाईदार पदार्थों के सेवन से भी नहीं ठीक होता तो उसे असाध्य समझना चाहिए। उपचार की अगली कड़ी के रूप में निरुह बस्ति दी जाती है। ऐसे में किसी सिद्ध चिकित्सक से

---

* *उदावर्त वातरोग का एक प्रकार है, जिसमें वायु, मल और मूत्र की गतिविधि ऊपर की ओर होती है (जबकि सामान्य स्थिति में इनकी गतिविधि नीचे की ओर होती है)। ऐसा प्रतिलोम (उल्टी दिशा में चलने वाली) वात के कारण होता है जो प्रायः वेग धारण (वेगों को रोकने) के कारण होता है।*

परामर्श लेना चाहिए। लौहपूरक के कारण भी कब्ज हो सकता है। अतः लौह औषध देते समय कब्ज की रोकथाम करने वाली दवा या आहार भी देना चाहिए।

११. दस्त या अतिसार

दस्त या अतिसार अनेक कारणों से हो सकता है। यह विरुद्धाहार करने से,एक बार खाये हुए अन्न का पचन होने से पहले पुनः खा लेने से, अधिक मात्रा में खा लेने से, अपच से, वेग धारण से, गुरु एवं ठोस पदार्थों के सेवन से (बीज,दलहन तथा बिना पके हुए धान), अतितर्पण (परितृप्त) से बगैर पकाये हुए कंद-मूल के सेवन से, प्रदूषित जल सेवन से, गुरु एवं अभिष्यंदि द्रव्यों के सेवन से तथा भूख, क्रोध या भय से भी हो जाता है। आम* होने पर पाचन औषधि (अष्टचूर्ण आदि) और पक्व होने पर स्तम्भक औषधि देने चाहिए।(कश्यप सं.,खिल १०) बिल्व, मुस्ता (साइपेरस रोटंडस), धनिया बीज और जीरे का काढ़ा दिया जा सकता है।

१२. ज्वर

गर्भवती स्त्री के लिए ज्वर अत्यंत कष्टकर है। मां से गर्भ को ज्वर की ऊष्मा पहुंचने से वह भी प्रभावित हो जाता है। ज्वर का कारण अत्यधिक परिश्रम, अतिशय भूख, मालिश, गर्मी, शौच का वेग रोकना, स्नेहन-स्वेदन और अग्नि कर्म का अनुचित प्रयोग, मानसिक तनाव, पहाड़ की चढ़ाई अथवा घास और फूलों की खुशबू (पराग) भी हो सकता है।

चौथे महीने से पहले महिला को एक दिन का उपवास करने की राय दी जाती है। प्रायः सगर्भावस्था में उपवास निषिद्ध है, लेकिन ज्वर की स्थिति में एक दिन का उपवास वह करे और अगले दिन पहले तरल आहार (जैसे चावल की कांजी) बगैर नमक, चिकनाई का ले। दोषों के शमित होने पर उसे मांस-यूष (सूप) और दूध दिया जाये। कटु एवं तीक्ष्ण खाद्य एवं पेय, व्यायाम और स्वेदन से परहेज रखें व कोई दवा न दें। चौथे मास की अवधि में और बाद में गर्भावस्था का मास, संबद्ध दोष और उनके संदूषण के स्तर को ध्यान में रखकर ही कोई औषधि व्यवस्था की जानी चाहिए। लेखन कर्म तथा शरीर को हल्का बनाने वाले अन्य

---

* *आम के विशेष विवरण के लिए देखें, तीसरा अध्याय आहार एवं पोषण के आयुर्वेदीय सिद्धान्त भाग एक, लोस्वापसंस महानिबंध २।*

उपाय रोग की पेचीदगियों, स्त्री की सहनशक्ति और गर्भावस्था के मास का भलीभांति विचार करके ही करना चाहिए। मुस्ता, पर्पटक (मोलुगो पेंटाफाइला), चंदन और सोंठ का काढ़ा दिया जा सकता है।

१३. पीलिया (कामला)

पीलिया के इलाज के लिए भूमि आमलकी (फाइलैन्थस नेरुरी) का स्वरस शहद और शक्कर के साथ अथवा गुडूची (टिनोस्पोरा कार्डिफोलिया), कटुकी (पिक्रोराइजा कुर्रोआ), चिरायता (स्वर्शिया चिराटा) और दारुहरिद्रा काढ़े के रूप में दिया जाता है।

१४. खसरा :

नीम (मेलिया आजाडिरेक्टा), धनिया, गुडूची और पटोल (ट्राइकोजैंथस डायोइका) का काढ़ा देना चाहिए।

१५. योनि में कण्डू या खुजली

हल्दी (करक्यूमा लोंगा), नीम और चंदन का लेप दिन में दो बार लगाना चाहिए।

१६. अतिशय योनिस्राव

गर्भावस्था में थोड़ा-बहुत स्राव (श्लेष्मल और रक्त) सामान्य बात है पर बार-बार और अत्यधिक स्राव होने पर तत्काल चिकित्सक से परामर्श करना चाहिए। स्राव के कारण की जांच भी की जानी चाहिए और आवश्यक उपचार करना चाहिए। सेमल (बांबेक्स मलाबारिकम) के फूलों को देशी घी में तलकर सबेरे शक्कर के साथ लेना चाहिए।

१७. पेशाब में जलन

गरम पानी के साथ गोक्षुरादि चूर्ण या केवल गोक्षुर (गोखरू) का काढ़ा देना चाहिए।

१८. मरोड़ (आक्षेप)

गर्भजन्य विषमयता के उपद्रव के रूप में भी मरोड़ हो सकता है। ऐसी स्थिति में उसे नींबू के रस में बिड लवण व सेंधा नमक मिलाकर देना चाहिए अथवा अग्निमंथ (प्रेम्ना लैटीफोलिया) और वरुण (क्रेटीवा नुरवला) का काढ़ा देना

चाहिए। बढ़े हुए दोषानुसार भी इसकी चिकित्सा की जा सकती है। गर्भावस्था की उत्तरोत्तर स्थितियों में घी से सेंक करना चहिए। सेंक रोगावस्था के अनुसार गरम या ठंडा हो सकता है।

१९. पेट में दर्द

यह अनेक कारणों से हो सकता है, वास्तविक कारण का पता लगाकर उसकी चिकित्सा की जानी चाहिए। मुलेठी, अदरक, और देवदारु (सीड्रस देवदार) का काढ़ा दिया जा सकता है। इससे राहत महसूस होगी। यदि दर्द गैस के संचय के कारण है तो उसे दूध में उबला हुआ लहसुन, लवणभास्कर चूर्ण या हिंग्वष्टक चूर्ण दिया जा सकता है। गैस का संचय रोकने के लिए वह आहार के साथ हींग का अधिक प्रयोग कर सकती है।

२०. सिरदर्द

धान्यक (धनिया) को दूध में पीसकर माथे पर लेप करना चहिए। इसमें भी सिरदर्द के कारणों का निवारण किया जाना चाहिए।

२१. अनिद्रा

भैंस का दूध पीना और सिर पर उसकी मालिश करनी चाहिए।

२२. किक्किस

बढ़ते हुए गर्भ के कारण नाभि के चारो ओर त्वचा के खिंचने से जो धारियां प्रकट होती हैं उन्हें किक्किस कहते हैं। आयुर्वेदिक दृष्टि से बढता हुआ गर्भ दोषों को ऊपर की ओर विस्थापित करता है जो वक्ष प्रदेश में पहुंच कर जलन और खुजली उत्पन्न करता है। इस खुजली के कारण पेट में रेखाकार धारियां बन जाती हैं। इस जलन और खुजली के निवारणार्थ मधुरगण औषधों से प्रसंस्कृत मक्खन लगभग १० मि.ली. दें। साथ ही चंदन और खस अथवा कुटज की छाल, अर्जक (आर्थोसिफ्लियान पैलिडस), मुस्ता (नागरमोथा) और हल्दी का लेप लगायें। पटोल, नीम, मंजिष्ठा (रूबिया कार्डिफोलिया) और तुलसी के काढ़े से पेट और सीने को तर करें।

खिंचती हुई त्वचा को विकृत होने से बचाने के लिए खुजलाने से बचना चहिए। यदि खुजली दुर्निवार हो उठे तो कुटज, अर्जक, मुस्ता, हरिद्रा, पटोल,

नीम, मंजिष्ठा, तुलसी आदि के चूर्ण को मलना चाहिए या चंदन का लेप करना चाहिए, जो तरी के कारण खुजली को दबा देगा।

स्थानीय प्रथाएं

ग्रामीण एवं जनजाति के लोग गर्भावस्था के दौरान न केवल निदान और देखभाल करने में सक्षम हैं बल्कि गर्भावस्था की अवधि में रोगों और अवस्थाओं का प्रबंध करने में भी उतने ही दक्ष हैं। गर्भावस्था की विभिन्न दशाओं में पायी जाने वाली विकृतियों और उनके उपचार की एक व्यापक सूची पूर्व में दी जा चुकी है। इनमें से कुछ को छोड़ अन्य रोगों को वे आसपास उपलब्ध औषधों से ठीक कर लेते हैं। उनकी अधिकांश प्रथाएं स्वस्थ और प्रोत्साहनीय हैं, लेकिन कुछ ऐसी भी हैं जिनके पीछे तर्काधार नहीं हैं और खतरे वाली हैं अतः उन्हें हतोत्साहित करना चाहिए। कुछ ऐसी प्रथाएं भी हैं जिनका विशेष अध्ययन किया जाना चाहिए।

लोस्वापसंस के क्षेत्रीय समूहों ने जो सर्वेक्षण किए हैं, उनके अनुसार तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक में बदन दर्द के लिए तेल मालिश और गरम पानी से स्नान का परामर्श दिया जाता है। उत्तर प्रदेश से मिली रपट के अनुसार अजवायन (एपियम ग्रैवियोलेन्स) के साथ गरम किये गये पानी से सेंकना चाहिए। गुजरात से सूचना मिली है कि सहिजन (मोरिंगा ओलिफेरा) युक्त गरम पानी ज्यादा लाभदायक है। उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु में चक्कर और उल्टी के लिए धनिये के बीज के चूर्ण में शक्कर मिलाकर दिया जाता है। नींबू के रस का प्रयोग तमिलनाडु और कर्नाटक में बहुतायत से किया जाता है। तमिलनाडु में कुछ लोग चटनी के रूप में अदरक भी लेते हैं।

कमजोरी और रक्ताल्पता में दूध और बादाम लिया जाता है। उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु और गुजरात में घी, दूध, फल और पुष्टाहार की सिफारिश की जाती है। इलायची और सौंफ का काढ़ा, अदरक, पुदीना और तिरुवच्चि (बौहीनिया टोमेंटोसा) की चटनी भी दी जाती है। तिरुवच्चि की पत्तियों की चटनी सिद्ध वैद्य प्रदूषित पिन में तथा वमन और क्षुधानाश (९) में देते हैं। शोथ (सूजन) के लिए तमिलनाडु में जौ का पानी और ताड़ के गुड़ के साथ ताड़ के कोमल पत्ते दिये जाते हैं। ये दोनों मूत्रल हैं और मूत्रधारण को रोकने में सहायक होते हैं। रतौंधी और

धुंधली दृष्टि के लिए कोई उपचार ज्ञात नहीं हुआ। तमिलनाडु और कर्नाटक में क्रिमि के लिए ज्योतिष्मती (कार्डियोस्पर्मम लेलिकानम) देते हैं।

तमिलनाडु में घोंघे का मांस खिलाकर बवासीर का इलाज किया जाता था। सिद्ध वैद्य घोंघे के खोल और घोंघे के मांस से निर्मित औषधों का खुलकर प्रयोग करते हैं। कब्ज से राहत के लिए हरी और पत्तेदार सब्जियां और केलों का सेवन करने की राय प्रचुरता से दी जाती है (८)। केरल और तमिलनाडु के कुछ इलाकों में अतिसार में मौखिक निर्जलीकरण का सहारा लिया जाता है जबकि शेष तमिलनाडु में दूध में पकाया हुआ लहसुन 'लशुन क्षीरपाक' के रूप में देते हैं। मट्ठा-भात भी दिया जाता है ओर मिर्च तथा हरी सब्जियों से परहेज किया जाता है। लशुन क्षीरपाक आमपाचन और अग्नि दीपन औषध का काम करता है।* मिर्च और हरी सब्जियों से परहेज करने की प्रथा अच्छी है। ज्वर के लिए केरल और तमिलनाडु में त्रिकटु (अदरक, पिप्पली, काली मिर्च) और तुलसी का काढ़ा देते हैं। पीलिया एक व्यापक रोग जान पड़ता है और क्षेत्र-समूह इसके इलाज में दक्ष हैं। तमिलनाडु और कर्नाटक में भूमि-आम्लकी का प्रयोग एतदर्थ किया

---

* *विस्तृत विवेचन के लिए देखें "स्वास्थ्य की स्थानीय परंपराएं", लोस्वापसंस महानिबंध-१, पृ.६*

जाता है। उड़ीसा और तमिलनाडु में घृतकुमारी और भृंगराज का भी प्रयोग किया जाता है।

केरल और तमिलनाडु में योनि कंडू (खुजली) के निवारण के लिए नमकीन पानी, हरीतकी के काढ़े या सादे गरम पानी से धोने की राय दी जाती है। उड़ीसा में प्रभावित स्थान पर घी लगाने की राय दी जाती है। तमिलनाडु में अत्यधिक योनिस्राव के निवारणार्थ नरम नारियल और सौंफ का काढ़ा दिया जाता है। स्त्री को जौ का पानी और गोखरु का काढ़ा पेशाब में जलन की शिकायत में दिया जाता था। गोखरू मूत्रल होने के कारण जलन में राहत देता है।

पेट दर्द में धनिये के बीजों का या ताजे अदरक का काढ़ा ताड़ के गुड़ के साथ देते है। अरेंडी के तेल या नारियल के तेल का लेप पेट पर करते हैं। केरल और तमिलनाडु में सिरदर्द के लिए नरम नारियल को मां के दूध में पीस कर माथे पर लेप करते हैं।

तमिलनाडु में अनिद्रा के लिए स्त्री को रात को सोते समय अधिक मात्रा में भैंस का दूध पीने और सिर पर तेल या नींबू का रस लगाने की सलाह दी जाती है। 'गुरु' होने के कारण भैंस का दूध निद्राकारक है। नींबू का रस और तेल लगाने से सारे तंत्र को तरावट मिलती है और नींद आ जाती है। उपरोक्त दिए गए विवरणों से यह स्पष्ट है कि स्थानीय परंपराओं में रोग प्रबंधन के काफी उपाय शास्त्र सम्मत व लाभकारी हैं।

गर्भस्राव और गर्भपात

प्रत्येक गर्भावस्था अपनी अवधि पूर्ण करके संतानोत्पत्ति में परिणत नहीं होती। अनेक कारणों से बीच में ही सगर्भावस्था समाप्त हो सकती है। गर्भधारण के बाद के प्रथम तीन महीनों के भीतर सगर्भावस्था के अंत को स्राव कहते हैं। इसके बाद के तीन महीनों में होने वाले अंत को गर्भपात कहते हैं। छठे महीने के बाद होने पर उसे समयपूर्व प्रसव कहते हैं। गर्भपात या गर्भस्राव का पहला लक्षण रक्तस्राव और पीठ का तीव्र दर्द है। अतः इस प्रकार के लक्षणों के प्रकट होते ही स्त्री को चिकित्सक का परामर्श लेना चाहिए।

जब सगर्भावस्था की समाप्ति होकर रक्तस्राव होता है तो उसे गर्भस्राव कहते हैं। यह अनेक कारणों से संभव है, जिनमें अपथ्यकर आहार और चर्या सम्मिलित हैं। यदि दूसरे या तीसरे महीने में रक्तस्राव होता है तो इसका अर्थ यह है कि गर्भ स्थिर नहीं है क्योंकि इस अवधि के दर्म्यान भ्रूण में परिपक्वता नहीं होती। चौथे महीने के बाद होने वाला रक्तस्राव, संभव है हानिकारक न हो और रक्तस्राव के बावजूद सगर्भावस्था का परिरक्षण हो सके।

गर्भस्राव / गर्भपात

आचतुर्थात् ततो मासात् प्रस्रवेद् गर्भविच्युतिः।

ततः स्थिर शरीरस्थ वातः पंचम षष्ठयोः।। (सुश्रुत, निदान ८/७)।

चौथे महीने तक गर्भ का निष्कासन गर्भस्राव कहलाता है क्योंकि गर्भधारण का उत्पाद तरल रूप में रहता है। पांचवें और छठे महीने के बाद उसे गर्भपात कहते हैं, क्योंकि तब तक गर्भ के अंग कुछ स्थिरता प्राप्त कर ठोस बन चुके होते हैं। गर्भपात के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे क्रोध, दुख, ईर्ष्या, डाह, भय, आतंक, मैथुन, व्यायाम, झटके, वेगों को रोकना, अनुपयुक्त आहार, निद्रा और आसन, भूख प्यास और अपथ्यकर आहार आदि।

संप्राप्ति (रोगोत्पत्ति)

जब भ्रूण अपने बंधनों से मुक्त हो जाता है तो गर्भाशय के अंदर वह अपनी सामान्य सीमाओं से निकल कर यकृत, प्लीहा और आंतों के बीच के रिक्त स्थानों से

नीचे उतरता है। फिर वह उदरगुहा में क्षोभ उत्पन्न करता है जिससे अपानवायु प्रकुपित हो जाती है। इसके फलस्वरूप बगल, कोख (पेट का निचला भाग या गर्भाशय), बस्तिशीर्ष (मूत्राशय का गला), पेट और योनि में दर्द, साथ ही उदर का आध्मान या पेट फूलना, मूत्रावरोध और अन्य अनेक लक्षण उत्पन्न होते हैं जो नव गर्भ को रक्तस्राव द्वारा सताते हैं।

उपर्युक्त के फलस्वरूप निम्न लक्षण प्रकट होते हैं : रक्तस्राव के साथ ही गर्भाशय, त्रिक और उरुसंधि और मूत्राशय में दर्द। दर्द का कारण वायु का दूषण है और रक्तस्राव आमगर्भ के निष्कासन और आर्तववह स्रोतसों के द्वारों के खुलने के कारण होता है।

उपचार

चूंकि गर्भोपघातकर भाव उष्ण, तीक्ष्ण और सारक गुणों वाले होते हैं अतः गर्भस्राव का उपचार गर्भस्थापक आहार, विहार और औषधों द्वारा किया जाता है। अतः जो औषध दी जाती है वह सदा शीत, मृदु और स्तंभक प्रकृति के द्रव्यों की ही होती है।

१. रक्तस्राव आरंभ होते ही गर्भिणी को कोमल, सुखदायक और आरामदेह शय्या पर ढलवां स्थिति में इस प्रकार लिटाना चाहिए कि उसका सिर उसके पैर की अपेक्षा नीचा रहे।

२. नाभि के नीचे के संपूर्ण शरीर पर शतधौत घृत, और सहस्रधौत घृत का लेप करना चाहिए और उस पर गाय का हिमशीत दूध और यष्टिमधु (मुलेठी) या पीपल का काढ़ा छिड़कना चाहिए।

३. निम्नलिखित में से कोई एक पिचु (औषधियुक्त फाहा) दिया जा सकता है

(क) क्षीरी वृक्षों के रस में भिगोयी हुई औषधियुक्त रुई। क्षीरी वृक्ष वे हैं जिन्हें काटने पर सफेद तरल निकलता है। यह शब्द विशेष रूप से फाइकस परिवार के कसैले स्वाद वाले वृक्षों जैसे बरगद, उदुंबर, पीपल व प्लक्ष आदि के लिए प्रयुक्त होता है।

(ख) पीपल की कलियों के साथ उबाले हुए घी अथवा दूध में तर की हुई रुई।

(ग) मुलेठी चूर्ण मिश्रित घी में डूबी हुई रुई।

४. उसे पीने को सादा दूध या घी या पीपल की कलियों के साथ उबाला हुआ घी या दूध दो चम्मच की मात्रा में दिया जा सकता है।

५. उसे क्रोध और दुख से बचाना चाहिए। उसे ऐसी बातें सुनानी चाहिए कि वह प्रसन्न और शांत रहे। उसे परिश्रम, व्यायाम और मैथुन से बचना चाहिए (चरकसंहिता, शारीर ८/२४)।

वे परिस्थितियां, जिनमें गर्भस्राव को होने देना चाहिए

(क) जब रक्तस्राव अति तीव्र हो और उससे अपूरणीय क्षति हो चुकी हो, ऐसी स्थितियों में यदि गर्भस्राव को उपचार द्वारा रोक भी दिया जाय तो गर्भ में तीव्र रक्तक्षय के कारण कोई हानि या विकृति संभव है।

(ख) यदि रक्तस्राव का कारक वही हो जो कि "आम" के निर्माण का भी कारक है तो गर्भस्राव का उपचार न करके उसे हो जाने देना चाहिए क्योंकि गर्भस्राव का उपचार सौम्य, शीत और मृदु होगा जो आम अवस्था को और भी संगीन बनायेगा। अतः ऐसी स्थिति में यदि हम गर्भस्राव को रोकने का प्रयत्न करें भी तो 'आम' की विषाक्तता और भी बढ़ेगी जो गर्भ और गर्भिणी दोनों के लिए हानिकारक

सिद्ध होगी। अतः हमारे पास इसके सिवा कोई चारा नहीं है "आम" की चिकित्सा करें और गर्भस्राव को हो लेने दें।

गर्भस्रावोत्तर उपचार

गर्भधारण के उत्पादों के निष्कासन के बाद शोधन, पूर्ण निष्कासन और पीड़ा से मुक्ति के लिए उपचार देना चाहिए। सामान्य रूप से उपचार की दिशा गर्भस्राव निरोधक उपचार के विपरीत होती है। सामान्यतः यहां उष्ण, तीक्ष्ण और पाचन उपचार दिये जाते हैं।

(१) स्त्री की सामर्थ्य के अनुसार उसे मदिरा दी जा सकती है।

(२) लघु पंचमूल[१] औषधों के साथ औषधीकृत, चिकनाईरहित दलिया दिया जा सकता है। इससे वात का नियंत्रण होगा जो प्रवृद्ध स्थिति में हो सकता है और यह पित्त को घटायेगा भी जो शराब के कारण बढ़ा हो सकता है। बल्य (बलवर्द्धक) होने के कारण तीव्र रक्तस्रावजन्य कमजोरी को भी यह दूर करेगा।

(३) जो स्त्री शराब लेने में अनिच्छुक हो, उसे पाचक द्रव्यों से युक्त तिल और "उद्दालक" का नमक एवं चिकनाई रहित दलिया अथवा तिल और उद्दालक अथवा चावल और बृहत् पंचमूल[२] के काढ़े से बने पेय को पंचकोल[३] से औषधीकृत करके दिया जा सकता है। चूंकि महिला को शराब नहीं दिया गया है उसके पित्त में कोई वृद्धि नहीं हुई है। यह औषधि कफ की अधिकता पर भी काम करती है और शराब की दीपन-क्रिया का स्थान बृहत् पंचमूल की दीपन-

---

१. लघु पंचमूल वर्ग में निम्न औषधियां हैं – शालिपर्णी (डेस्मोडियम गैंजेटिकम), पृश्निपर्णी (यूरेरिया पिक्टा), कंटकारि (सोलैनम जैंथोकार्पम), गोक्षुर (ट्रिबुलस टेरेसट्रिस) और बृहती (सोलैनम इंडिकम)।

२. बृहत पंचमूल औषधियां बिल्व (ईगेल मार्मेलोस), अग्निमंथ (प्रेम्ना लैटिफोलिया), श्योनाक (ओरोक्जाइलम), पाटला (स्ट्रीयोस्पर्मम इंडिकम स्वैवियोलेन्स) और गंभारी (गमेलिना अर्बोरिया) है।

३. ये हैं पिप्पली (पाइपर लौंगम), पिप्पलीमूल, चव्य (पाइपर चबा), चित्रक (प्लंबैगो जीलैनिका), शुंठी (जिंजीबर आफिसिनेल) हैं।

क्रिया लेती है। यह बिगड़े हुए वात पर भी काम करती है। सभी पंचकोल औषध द्रव्य दीपन और पाचन हैं और इस प्रकार स्त्री की स्वाभाविक भूख को लौटाकर गर्भधारण के उत्पादों के निष्कासन में सहायक होते हैं। ये आहार गर्भावस्था के महीने के बराबर दिनों तक दिये जाने चाहिए, जैसे दूसरे महीने में गर्भस्राव होने पर यह आहार केवल दो दिन ही देना चाहिए। इससे गर्भाशय की शुद्धि होगी और स्त्री की कोख, पुट्ठों और पार्श्वों की पीड़ा मिट जायगी।

(४) **स्वेदन का प्रयोग** : स्वेद से तात्पर्य ऊष्मा का प्रयोग और उसके द्वारा पसीना उत्पन्न करना है। स्वेदन से स्रोतसों की सफाई में सहायता मिलती है क्योंकि इससे स्रोतस फैल जाते हैं और उत्सर्जन बढ़ जाता है।

अभ्यासिक गर्भस्राव

कुछ स्त्रियों में गर्भस्राव की प्रवृत्ति होती है। उन्हें सामान्य से परिश्रम अथवा सामान्य गतिविधि से भी गर्भस्राव हो जाता है। ऐसी स्त्रियों को अभ्यासिक गर्भस्राव अथवा बार-बार होने वाले गर्भस्राव की रोकथाम के उपचारार्थ दवाएं दी जा सकती हैं।

निम्न औषधों के चूर्ण अथवा पिष्टि का दूध के साथ निर्दिष्ट महीनों में प्रयोग करके गर्भ के समुचित विकास में सहायता की जा सकती है :-

१. **प्रथम मास** : मुलेठी, शाकबीज, पयस्या (आइपोमिया पैनिकुलेटा) और सुरदु (सेड्रस देवदार)।

२. **द्वितीय मास** : अश्मंतक (बाउहीमिया मलाबारिका), काला तिल, ताम्रवल्ली और शतावरी।

३. **तृतीय मास** : वृक्षादनी, पयस्या, लता, उत्पल और सारिवा (हेमिडेस्मस इंडिकस) ।

४. **चतुर्थ मास** : अनंता (गार्डेनिया फ्लोरिबंडा), सारिवा, रास्ना (प्लूचिया लान्सोलेटा), पद्म महुआ।

५. **पंचम मास** : बृहतीद्वयम्, काश्मरी (ग्मेलिना आर्बोरिया), दूध देने वाले वृक्षों के तने की छाल व कोपल और घी।

६. **षष्ठ मास** : पृश्निपर्णी (यूरिरिया पिक्टा), बला (साइडा कार्डिफोलिया) या वचा (ऐकोरस कैलेमस) सहिजन (मोरिंगा ओलिफेरा), स्वदंष्ट्रा और मधुपर्णिका।

७. **सप्तम मास** : शृंगाटक (ट्रापा बिस्पिनोजा), बिस, मुनक्का (वाइटिस वाइनिफेरा), कसेरु, मुलेठी और शक्कर।

८. **अष्टम मास** : कपित्थ (कैथा), बिल्व (ईगल मार्मेलोस), बृहती (सोलेनम इंडिकम), परवल (ट्राइकोजैंथेस डायोइका), इक्षु अथवा निदिग्धिका की जड़ों से प्रसंस्कृत दूध।

९. **नवम मास** : अनन्ता, सारिवा, पयस्या (आइपोमिया पैनिकुलेटा) और मुलेठी (ग्लाइसिरिजा ग्लैब्रा) से प्रसंस्कृत दूध।

१०. **दशम मास** : सोंठ (जिंजिबर आफिसिनेल) और पयस्या अथवा केवल पयस्या से प्रसंस्कृत दूध (यह अति तीव्र दर्द को भी दूर कर देता है)।

गर्भ की विकृतियां और उपसंहार

कुछ ऐसी स्थितियां हैं जिनमें मां के अनुचित आहार और विहार से गर्भपात या गर्भस्राव नहीं होता, पर ऐसी चिरकालिक विकृति अवश्य हो जाती है जिससे गर्भावस्था की परवर्ती स्थितियों में कोई विकृति या अंतःगर्भाशयी मृत्यु हो सकती है। इनकी पहचान आसान नहीं है। आजकल हमारे सामने गर्भाशयी मस्से, डिंब प्रणालीय गर्भावस्थाएं, कोष्ठकी मस्से और औदरीय गर्भावस्था जैसी अनेक घटनाएं आ रही हैं। आयुर्वेदीय आचार्यों ने कुछ अवस्थाओं का वर्णन किया है। जिनमें ऐसे ही लक्षण उत्पन्न होते हैं यद्यपि वर्णित निदान तथा रोगोत्पत्ति में अंतर हो सकता है।

औदरीय गर्भावस्था के लक्षण और चिन्ह

यहां प्रसूति विषयक पाठ्यग्रंथ से एक उद्धरण देकर विषय को स्पष्ट किया जा रहा है:-

यदि गर्भ इतना बड़ा आकार पा लेता है कि उसका अवशोषण संभव न हो तो वह मर जाता है और फिर उसका पूयीभवन, कैल्सीकरण, ममीकरण या शवसिक्थ निर्माण संभव है। जब गर्भकोष आंतों से चिपक जाता है तब गर्भकोष में संक्रमण और उसका पूयीभवन हो सकता है। अंततः घाव फूटता है और यदि रोगी पूतिजीवरक्तता से नहीं मरता तो गर्भ के अंग उदरीय भित्ति से अथवा अधिक सामान्यतया मूत्राशय या गुदद्वार द्वारा बाहर कर दिये जाते हैं। कुछ में गर्भावस्था अपनी अवधि पूरी कर सकती है और तब मिथ्या प्रसव वेदना उत्पन्न होती है और गर्भ की मृत्यु हो जाती है, वह तरल अवशोषित हो जाता है और पेट का उभार घट जाता है। अक्सर ममीकरण और लीथोपियोडियन का निर्माण होता है और गर्भधारण के कैल्सीकृत उत्पाद बरसों बगैर लक्षणों को उत्पन्न किये चल सकते हैं (६)।

आचार्यों ने कई प्रकार से गर्भ व्यापदों का वर्णन किया है। जैसे आचार्य भेल ने स्त्रीस्वरत्व का पुरुष में तथा पुरुष स्वरत्व को स्त्री में वर्णित किया है। आचार्य

शार्ङ्गधर ने उपविष्टक, नागोदर, मक्कल, मूढ़गर्भ, विष्कम्भ, जरायुदोष एवं गर्भपात आदि ८ गर्भ विकारों का उल्लेख किया है।

कुछ विकारों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है। इनके अतिरिक्त भी गर्भक्षय, गर्भवृद्धि, नागोदर, भूतहृत या नैगमेषहृत गर्भ का भी विवेचन उपलब्ध है।

१. गर्भ शोष

गर्भधारण के बाद समुचित आहार (गर्भ के लिए पोषण) के अभाव में अथवा योनिगत स्रावों (रक्तस्राव) के कारण गर्भशोष (क्षीणता या शुष्कता) का शिकार हो सकता है। ऐसा गर्भ बहुत समय के बाद अपने समुचित विकास को प्राप्त होता है और स्त्री उसका प्रसव दीर्घकाल के बाद करती है।

सुश्रुत के अनुसार इसका कारण वायु की पीड़ा है – गर्भ सूख जाता है, माता के पेट को ठीक से नहीं भरता और बहुत धीरे कांपता है। इस अवस्था के लक्षण निम्नवत् है :–

१. गर्भ का आकार छोटा और अविकसित होता है।

२. गर्भ का कंपन अत्यंत धीमे होता है।

३. गर्भ–हृदय की ध्वनि भी बहुत धीमी होती है। यथा,

'वाताभिपन्न एवं शुष्यति गर्भः। समातुः कुक्षिं न पूरयति मन्दं स्पन्दते च।'(सु.शा. १०/५१)

उपचार : (१) रुक्ष (शुष्क) द्रव्यों और वात प्रकोपक द्रव्यों के सेवन से बचना चाहिए।

(२) दूध, मांसयूष तथा बृंहणीय औषधियों का सेवन करना चाहिए।

(३) मुलेठी, काश्मरी (गमेलिना अर्बोरिया) के फल और सारिवा (हेमडेस्मस इंडिकस) के साथ प्रसंस्कृत या बगैर प्रसंस्कृत दूध शक्कर के साथ लेना चाहिए।

२. उपविष्टक गर्भ

सगर्भावस्था के चतुर्थ मास के पश्चात् अर्थात् गर्भ द्वारा सार की प्राप्ति के पश्चात् होने वाली अवस्था में यदि उष्ण और तीक्ष्ण आहार के सेवन से गर्भिणी को रक्तस्राव या कोई अन्य प्रकार का योनिस्राव होने से गर्भ का समुचित विकास नहीं हो पाता और प्रसव में विलंब होता है। इस स्थिति को उपविष्टक कहते है।

उपचार : जो घृत प्रायः भूतोपद्रवों के शमनार्थ दिये जाते है वे ही उपविष्टक की चिकित्सा के लिए भी दिये जाते हैं जैसे, वचाघृत, गुग्गुल्वादि घृत और महापैशाचिक घृत। साथ ही जीवनीय, बृंहणीय, मधुर और वातहर औषधियों से प्रसंस्कृत दूध और मांसयूष (सूप) अथवा सादा दूध और मांसयूष (सूप) भी दिये जा सकते हैं।

३. नागोदर/उपशुष्क

यदि स्त्री व्रत-उपवास रखती है, बासी खाना खाती है, चिकनाईदार पदार्थ नहीं लेती पर अन्य वात-प्रकोपक पदार्थ लेती है तो गर्भ सूख जाता है और ठीक से नहीं बढ़ता। ऐसा गर्भ गर्भाशय में बहुत समय तक पड़ा रहता है और कांपता भी नहीं है। इस अवस्था को नागोदर कहते हैं।

उपचार : इसका उपचार उपविष्टक के समान है।

४. लीन गर्भ

स्त्रोतसों में अवरोध और वात के कारण गर्भ चिपक या सट जाता है। यह गर्भ गर्भाशय में सुदीर्घ काल तक रहता है और अनेक गुत्थियां उत्पन्न करता है।

उपचार : (१) गर्भिणी को मृदु और स्निग्ध स्वेदन, वमन और रेचन कराना चाहिए क्योंकि तीव्र वामक आदि औषधों से गर्भ की हानि संभव है।

(२) बृंहण दलिया देनी चाहिए।

(३) गर्भिणी को संतुष्ट रखना चाहिए।

उपसंहार

जैसा कि हम पहले के अध्यायों में बता चुके हैं, गर्भावस्था के निदान के क्षेत्र में स्थानीय समुदायों का ज्ञान बहुत ही अच्छा है। गर्भिणी की देखभाल और गर्भावस्था की बीमारियों की चिकित्सा के क्षेत्रों में भी अनेक स्वस्थ परंपराएं और ज्ञान का समृद्ध भंडार है। फिर भी कुछ क्षेत्रों में ज्ञान अपूर्ण है जिसकी पूर्ति भारतीय चिकित्सा पद्धतियों से करनी होगी। कुछ ऐसी प्रथाओं की पहचान की गई है जिनका विस्तार से गहन अध्ययन आवश्यक है। फिर भी सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें तटस्थ भाव से लोक स्वास्थ्य परंपराओं की परीक्षा करनी होगी

---

* *१. चूंकि विषय की चर्चा आगे भाग-२ में की जायेगी, अतः विस्तृत, समग्र परिणाम बाद में दिया जायगा, यहां केवल कुछ बातें कही जा रही हैं।*

और उन्हें समझने का प्रयास करना होगा। अभी भी विविध सरकारी एजेन्सियों द्वारा तैयार करायी गयी ऐसी बहुसंख्यक पैंफलेट आदि सामग्री प्रचार में हैं, जिनमें पाश्चात्य विचार केंद्रित पक्षपात स्पष्ट रूपसे दिखता है। इनमें से कुछ में हमारे लोगों की अनेक प्रथाओं को अंधविश्वास का नाम दिया है जो इसी पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण का फल है, जिसके कारण वे हमारी अपनी वैज्ञानिक परंपराओं के दृष्टिकोण से इन परंपराओं को नहीं देख सके हैं। उदाहरणार्थ हमारे एक लब्धप्रतिष्ठ संस्थान ने अपनी पोषाहार नामक एक पुस्तिका में एक अध्याय "गर्भिणी की देखभाल" के नाम सौंपा है जिसमें कहा गया है कि "कुछ गर्भिणी स्त्रियां मानती हैं कि अंडे, मांस, पपीता आदि कुछ आहार-द्रव्य 'उष्ण' हैं और गर्भस्रावकारक हैं.... इन विश्वासों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है" (१३)। इस प्रकार के विचार बिना किसी वैज्ञानिक परीक्षण या आधार के दिए जाने के कारण स्वयं ही अवैज्ञानिक हैं।

इस प्रकार के अदूरदर्शी विचार न केवल बुद्धिजीवियों और वैज्ञानिकों में प्रचलित हैं बल्कि ये सामुदायिक स्वास्थ्यकर्मियों में भी प्रचलित हो गए जान पड़ते हैं, जिन्हें स्थानीय प्रथाओं और परंपराओं की ज्यादा गहरी और व्यापक जानकारी होनी चाहिए। उदाहरणार्थ स्वास्थ्य कर्मियों के लिए लिखी गयी एक प्रसिद्ध पुस्तक कहती है कि "बहुत लोगों का विचार है कि अनेक खाद्य ऐसे हैं जो हानिकारक हैं और जिनका सेवन रोगी को नहीं करना चाहिए। वे कुछ खाद्यों को 'उष्ण' खाद्य और कुछ को 'शीत' खाद्य मानते हैं और उष्ण बीमारियों में 'उष्ण' खाद्य 'शीत' व्याधियों में 'शीत' खाद्य से परहेज आवश्यक मानते हैं। वे ऐसे खाद्य भी टाल जाते हैं जिन्हें वे 'पित्तकर' समझते हैं और अनेक खाद्यों को जच्चा के लिए ही उपयुक्त मानते हैं। " इन विश्वासों से लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक संभव है (१४)।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि किसी वैज्ञानिक पद्धति के अज्ञान के बावजूद किए गए ये मूल्यांकन और शिक्षण सामग्रियां उच्च कोटि के नृजातिकेंद्रित पक्षपात व पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हैं। हमें इन सीमाओं से ऊपर उठना होगा, तभी हम अपनी वैज्ञानिक परंपराओं के प्रकाश में इन प्रथाओं को समझ सकेंगे और उनसे शक्ति लेकर नवनिर्माण कर सकेंगे। ऐसा एक प्रयास लोस्वापसंस की ओर से किया गया था जिसकी विस्तृत जानकारी द्वितीय परिशिष्ट में दी गई है।

प्राविधिक शब्द-संग्रह

(१) अग्निकर्म - दहनकर्म

(२) अक्ष – भार की एक माप जो लगभग १० ग्राम के बराबर होती है।

(३) अपानवायु – वात के पांच प्रकारों में एक,

(४) अपरा – जरायु, प्लेसेंटा

(५) अनुवासन बस्ति – स्निग्ध बस्ति

(६) आस्थापन बस्ति – संशोधक अथवा शुष्क बस्ति

(७) आर्तव – मासिक रजःस्राव

(८) आर्तववह स्रोतस – आर्तव के वाहक मार्ग

(९) ओजस – धातुओं का अंतिम सार भाग

(१०) कर्मेन्द्रिय – क्रिया के अंग

(११) कुक्षि – श्रोणि प्रदेश

(१२) गर्भस्थापक – गर्भवृद्धि के लिए अनुकूल आहार व परिचर्या

(१३) गर्भिणी परिचर्या– गर्भवती की देखभाल

(१४) गोत्र – कुल

(१५) चेतना – जीवन

(१६) छर्दि – उल्टी

(१७) जीव – जीवन

(१८) दौहृद – दो हृदय वाली स्थिति

(१९) नतई – घोंघा

(२०) पिचु – फाहा

(२१) प्रसव मार्ग – प्रजनन पथ
(२२) बस्तिशीर्ष – बस्ति की गर्दन
(२३) बीज – डिम्ब (स्त्री) शुक्राणु (पुरुष)
(२४) मस्तु – दही का तोड़
(२५) मासानुमासिक पथ्य – माह के अनुसार आहार व्यवस्था
(२६) रक्तमोक्षण – रक्त निकालना
(२७) रस – पाचन का परिणाम
(२८) लंघन – उपवास
(२९) लेखन कर्म – रेचन, खुरचना
(३०) लावा – धान का लावा
(३१) क्षेत्र – स्थान (इस प्रसंग में गर्भाशय)
(३२) क्षार – ऐल्कली
(३३) ज्ञानेन्द्रिय – अनुभूतिकारक अंग

द्वितीय परिशिष्ट

जच्चा और बच्चा से संबद्ध प्रथाओं का लोस्वापसंस द्वारा सर्वेक्षण

१९८७ में यह निर्णय लिया गया कि लोस्वापसंस (लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्द्धन समिति) और चेतना (सेंटर फार हेल्थ एजुकेशन ट्रेनिंग ऐंड न्यूट्रिशन एवेयरनेस) संयुक्त रूप से देश के विभिन्न समुदायों में प्रचलित जच्चा और बच्चा से संबंधित प्रथाओं का एक अखिल भारतीय सर्वेक्षण प्रायोजित करेंगे। इस सर्वेक्षण के उद्देश्य निम्न थे :-

(१) मां और बच्चे के स्वास्थ्य के क्षेत्र में विभिन्न स्थानीय परंपराओं से संबंधित निर्देश - रेखा आंकड़े इकट्ठा करना।

(२) आयुर्वेद के परिप्रेक्ष्य में इन प्रथाओं की उपयुक्तता का मूल्यांकन करना।

ऐसा महसूस किया गया कि इस प्रक्रिया से हमें परंपराओं की शक्ति, कमजोरी के क्षेत्र, जिनमें बाहरी निवेश की जरुरत है और जो विकृतियां आ गयी हों उन्हें पहचान कर ठीक करने में सहायता मिलेगी। यह सर्वेक्षण एक प्रश्नावली के आधार पर, जो तीन भागों में विभाजित थी, सघन साक्षात्कार पर आधारित था। प्रत्येक भाग एक विशिष्ट क्षेत्र से संबद्ध था -

(१) गर्भवती की प्रसव-पूर्व परिचर्या

(२) दाइयों की प्रथाएं और

(३) मां और बच्चे की जन्मोत्तर देखभाल।

यह सर्वेक्षण संपूर्ण भारत के १२ राज्यों में फैली २६ स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा किया गया। प्रश्नावलियां हिंदी तथा विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में तैयार करायी गयीं। प्रत्येक क्षेत्र में एक सौ प्रतिवादियों का साक्षात्कार किया गया। प्रसव - पूर्व देखभाल से संबंधित प्रश्नावली के २५ प्रतिवादी (गर्भवती स्त्रियां) थे, दाइयों से संबंधित प्रश्नावली के २५ प्रतिवादी (दाइयां) थे और जन्मोत्तर देखभाल के ५० प्रतिवादी (इनमें से २५ ऐसी माताएं थीं जिनके शिशु की वय एक वर्ष से कम थी और शेष २५ स्त्रियां ऐसी थीं जिनको कई बार गर्भधारण करने का अनुभव

था) थे। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र से १०० उत्तर प्राप्त किये गये और सारे भारत से कुल २६०० स्त्रियों का साक्षात्कार किया गया।

सर्वेक्षण के सारणीकृत परिणाम मूल्यांकन के लिए २२ वैद्यों (सभी आयुर्वेदिक आचार्य) को दिए गए। इनसे प्रार्थना की गयी कि वे आयुर्वेद के दृष्टिकोण से प्रथाओं का मूल्यांकन करें और उन पर अपना अभिमत निम्न श्रेणियों में से किसी एक में रख कर दें :-

(१) ठीक और पूर्ण

(२) ठीक किंतु अपूर्ण

(३) प्रथा पर टीका करने का कोई आधार नहीं मिलता

(४) हानिकारक और संकट उत्पन्न करने में समर्थ।

हम जानते हैं कि इस प्रकार का मूल्यांकन कामचलाऊ ही हो सकता है क्योंकि प्रथाओं से क्षेत्रीय अंतर बहुत हो सकता है ओर उनके मूल्यांकन के लिए क्षेत्र समूह की स्थितियों के विभिन्न अन्य पहलुओं की अत्यंत घनिष्ठ जानकारी आवश्यक है। अतः फरवरी १९८९ में आलंदी (पुणे के निकट) में एक बैठक आयोजित की गयी, जिसमें क्षेत्र समूहों के वे प्रतिनिधि, जिन्होंने सर्वेक्षण किया था तथा वे आचार्य, जिन्होंने मूल्यांकन किया था संकलित आंकड़ों पर विस्तृत विवेचना के लिए एकत्र हुए। इन चर्चाओं के आधार पर कतिपय मूल्यांकनों में सुधार किया गया और बैठक के बाद आंकड़ों को एक नये प्रारूप में संक्षिप्त किया गया।

प्रस्तुत मूलपाठ में इन प्रश्नावलियों के उत्तरों का स्थानीय स्वास्थ्य परंपराओं को निर्दिशित करने के लिए खुलकर इस्तेमाल किया गया है। इस सर्वेक्षण में प्रयुक्त प्रश्नावलियां अधः प्रस्तुत हैं।

मातृ एवं शिशु परिचर्या में परंपरागत प्रथाओं का अखिल भारतीय अध्ययन

(निम्न प्रश्न प्रश्नावली के तीनों भागों में एक समान है)

सर्वेक्षक का नाम :

तिथि

क्षेत्र : कबायली/झुग्गी/ग्रामीण/शहरी

गांव का नाम :

क. प्रतिवादी का नाम

ख. जाति :

ग. वय :

घ. शिक्षण :

ङ. पता :

च. प्रतिवादी के परिवार की सामाजिक – आर्थिक हैसियत के संबंध में कृपया अपनी आख्या दें।

१. गर्भावस्था की अवधि में पालन की जाने वाली प्रथाओं से संबंधित प्रश्नावली

१. क्या आप गर्भावस्था की पुष्टि कर लेती हैं? कब? कैसे?

२. क्या आप प्रसव की तिथि का पूर्वानुमान कर लेती हैं? कैसे?

३. क्या गर्भावस्था के उत्तरोत्तर प्रत्येक महीने में कोई विशेष आहार लेने की परंपरा है?

(क) हाँ/नहीं

(ख) यदि हां, तो कौन सा खाद्य किस महीने में और क्यों?

अवधि	आहार	कारण
प्रारंभ के तीन महीनों की अवधि में		
चौथे, पांचवें और छठे महीने की अवधि में		
अंतिम तीन महीनों की अवधि में		

४. गर्भावस्था की अवधि में किन खाद्यों से बचना चाहिए और किन खाद्यों का सेवन अधिक करना चाहिए?

असेवनीय खाद्य	कब?	कारण
सेवनीय खाद्य		

५. क्या गर्भवती स्त्री की किसी खाद्य अथवा अन्य पदार्थ (कीचड़, मिट्टी के पदार्थ, खट्टी चीजें आदि) के प्रति तीव्र आसक्ति रहती है?

हां/नहीं

कौन से खाद्य अथवा पदार्थ?

कारण

६.क. क्या गर्भवती स्त्री कोई खास हरकत (जैसे दौड़ना, चलना) करना चाहती है या उसके व्यवहार में कोई अंतर (जैसे चिड़चिड़ापन) देखा जाता है?

हां/नहीं

कौन सी हरकत?

यदि हां तो समुदाय में कौन - सी प्रचलित धारणाएं हैं?

७. गर्भवती स्त्री के लिए करने योग्य और न करने योग्य क्या है? (सोचने, व्यवहार करने, बोलने, मैथुन, सोने के क्रम, व्यायाम, घरेलू कामकाज के पदों में) इनके पीछे क्या विश्वास हैं?

क. हां/नहीं

ख. विधि : कारण

ग. निषेध : कारण

८. क्या आप बता सकती है कि लड़का होगा या लड़की? जुड़वां? कैसे?

९. वांछित संतान के लिए क्या कदम उठाने चाहिए? (पुंसवन विधि)

१०. क्या गर्भवती स्त्रियां प्रसव से पूर्व परंपरागत दाई अथवा स्वास्थ्य कर्मियों के पास जाती हैं?

हां/नहीं

क. यदि हां तो किस समय और किसलिए?

ख. यदि नहीं तो क्यों?

११. गर्भावस्था की अवधि में होने वाली समस्याओं में क्या उपचार देते हैं?

क्र.सं.	समस्या	उपचार के लिए किसके पास जाते हैं	दिया गया उपचार
१.	बदन और जोड़ों का दर्द		
२.	चक्कर		
३.	कमजोरी (रक्ताल्पता)		
४.	वमन/उबकाई		
५.	शोथ		
६.	रतौंधी		
७.	धुंधली दृष्टि		
८.	क्रिमि		
९.	बवासीर		
१०.	कब्ज		
११.	अतिसार		
१२.	ज्वर		
१३.	मलेरिया		
१४.	कामला		
१५.	मसूरिका		
१६.	योनिकंडू (खुजली)		
१७.	योनिगत स्राव का अतिरेक (सफेद/लाल)		
१८.	पेशाब में जलन		
१९.	मरोड़		
२०.	पेट में दर्द		
२१.	सिरदर्द		
२२.	अनिद्रा		

१२. किन अवस्थाओं में दाई गर्भवती को प्रसव के लिए अस्पताल ले जाने की राय देती है?

१३.क.अपने क्षेत्र में होने वाले स्वाभाविक गर्भपात का कारण बतायें।

ख. आपके क्षेत्र में गर्भपात कैसे कराया जाता है?

१४. जन्मपूर्व शिशु की मृत्यु और मृतशिशु जन्म के विवरण बतायें।

१५. शिशुओं की मृत्यु के कारण

वय वर्ग	मृत्यु के कारण
०–१ वर्ष	
१–५ वर्ष	
५–१२ वर्ष	

२. दाइयों की प्रथाओं से संबंधित प्रश्नावली

१.क. क्या आप गर्भावस्था की पहचान कर सकती हैं? हां/नहीं

कैसे?

ख. क्या आप गर्भावस्था की अवधि निश्चित कर सकती हैं? हां/नहीं

कैसे?

२. यदि बच्चे का जन्म पूर्ण अवधि से पहले हो तो क्या मां और बच्चे के स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव पड़ता है? हां/नहीं

३. क्या आप अस्थानिक गर्भ का निदान कर सकती हैं? कैसे?

४. आप आसन्न – प्रसवता का निर्धारण कैसे करती हैं?

५. आप वास्तविक एवं मिथ्या प्रसव वेदना में भेद कैसे करती हैं?

६ क्या आपका कभी परिपक्वोत्तर प्रसव (दस महीने के बाद) से साबका पड़ा है? हां/नहीं। यदि हां तो आपने ऐसी स्थति में क्या किया?

७. सुरक्षित एवं सरल प्रसव के लिए आप क्या करती हैं?

किस स्थिति में	किस कारण से
i) विशिष्ट खाद्य और आहार	
ii) बस्ति	

iii) व्यायाम

iv) पेट पर तेल की मालिश

v) विशेष आसन

vi) औषध

vii) धूपन

viii) दर्द की अवधि में पेट को बाहर की ओर खींचना

ix) अन्य

---

८. प्रसूति की तैयारी के लिए आप क्या करती हैं? आप क्या विशेष व्यवस्था करती हैं (संवातन, प्रकाश आदि) क्यों?

९. बच्चा देने वाली स्त्री के लिए सबसे अच्छी मुद्रा कौन सी है?

१०. क्या दाई निम्न प्रकार के प्रसव करा सकती है?

क. समयपूर्व प्रसव

ख. सिर पहले निकल रहा हो

ग. प्रसव वेदना से पूर्व रक्तस्राव

घ. यदि हाथ और पैर पहले निकलें

ङ. यदि नाल गले में लिपटी हो

च. जुड़वां

छ. अनुनितंब प्रसव

ज. तिर्यक् प्रसव

झ. झिल्ली का समय पूर्व फटना (पानी)

११. किन परिस्थितियों में दाई गर्भिणी को प्रसव के लिए अस्पताल ले चलने का परामर्श देती है?

१२. आप कैसे पता लगायेंगी कि बच्चा गर्भाशय में मर चुका है?

१३. यदि प्रसव से पूर्व रक्तस्राव अधिक हो तो आप क्या करेंगी?

१४. यदि प्रसव के बाद रक्तस्राव अधिक हो तो आप क्या करेंगी?

१५. यदि प्रसव के बाद स्त्री मूर्च्छित हो जाय तो आप क्या करेंगी?

१६. आप नाल कब काटती हैं और क्यों? (सही का निशान लगाएं)

क. जरायु के बाहर आने से पहले

ख. जरायु के बाहर आने के बाद

१७.क. नाल कौन काटता है? क्यों? (कारण)

ख. काटने से पहले नाल को बांधते हैं या नहीं? कारण

ग. किस चीज से आप नाल काटती हैं?

घ. नाल काटने वाले औजार को किसी प्रकार से उपचरित करती हैं?

हां/नहीं

क्यों? (कारण)

ङ. औजार का उपचार कैसे करती हैं?

च. किस बिंदु पर आप नाल काटती हैं?

१८. नाल काटने के बाद आप उस पर कुछ लगाती हैं? हां/नहीं

क्यों?

क. यदि हां, तो क्या लगाती हैं? समुचित उत्तर पर सही का निशान लगाएं

सामग्री	कारण
i) राख (कौन सी)	
ii) गाय का गोबर	
iii) औषधि	
iv) तेल/घी	
v) अन्य	

ख. नाभिरज्जु को सुखाने के लिए क्या लगाते हैं?

१९. यदि जरायु बाहर न निकले तो आप क्या उपाय करती हैं? कारण

२०. प्रसव के बाद जरायु का क्या करती है? (सही निशान लगाएं) क्यों?

(क) जला देती हैं

(ख) गाड़ देती हैं

(ग) फेंक देती हैं

(घ) अन्य

२१. यदि प्रसव के दर्म्यान योनि कट-फट जाये तो आप अपने अनुभव से क्या करती है? क्यों?

२२. प्रसव के तुरंत बाद गर्भाशय की सफाई के लिए आप क्या कुछ देती हैं?

२३. क्या आप प्रसव के बाद स्त्री को योनि धूपन चिकित्सा देने का परामर्श देंगी? हां/नहीं

कैसे (उपयुक्त सामग्री) ?

कारण (क्यों)?

२४. नवजात में क्या चिन्ह और लक्षण देखे जाते हैं?

चिन्ह	कारण
i.	
ii.	

१५. यदि नवजात न रोये तो आप क्या करेंगी?

२६ यदि नवजात लड़के का मूत्रमार्ग संकरा हो तो आप क्या करेंगी? क्यों?

२७. यदि नवजात के गले में गांठ हो तो आप क्या करेंगी? क्यों?

२८.क.क्या नवजात के निम्न अंगों की सफाई की जाती है? क्यों? कारण बताएं

	कब?	कैसे?	कारण
१. मुंह			
२. नाक			
३. कान			
४. नाभि रज्जु			

ख. शिशु के उक्त अगों की सफाई के लिए कौन सी दवाएं या सामग्री का प्रयोग करते हैं? कारण बताइए।

ग. शिशु को कब नहलाते हैं? क्यों?

घ. समय-पूर्व उत्पन्न शिशु को नहलाते हैं? हां/नहीं यदि हां तो कब?

३. (क) नवजात शिशु की देखभाल से संबंधित प्रश्नावली

१. नवजात शिशु के शरीर की सफाई के लिए आप किस चीज का प्रयोग करती हैं? (सही) और कब?

(क) तेल

(ख) साबुन

(ग) औषध (नाम बतायें)

(घ) ठंडा पानी

(ङ) गरम पानी

(च) उड़द की पीठी और दूध का मक्खन

(छ) हल्दी चूर्ण

(ज) कोई अन्य

२. शिशु को स्तनपान कब शुरू कराते हैं?

(क) प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम दिवस

(ख) स्तनपान कराने से पहले पीला दूध निकाल देती हैं?

(ग) यदि पहले दिन से स्तनपान नहीं कराते तो क्या देते हैं और क्यों?

३. स्तनपान कब तक कराते हैं? क्यों?

४. लड़की और लड़के के स्तनपान कराने की अवधि में कोई अंतर है? कारण (क्यों)?

५. बच्चे को दिन में कितनी बार स्तनपान कराते हैं? कारण (क्यों)?

६. बच्चे को कितनी बार पानी देते हैं? क्या पानी में कुछ मिलाते हैं? एक बार में कितना पानी देते हैं?

७. नवजात में प्रायः कौन सी तकलीफ/बीमारी देखी जाती है?

तकलीफ/बीमारी	इलाज	किसका	कारण
कब्ज			
कामला			
उदरशूल			
आंख आना और अन्य नेत्र विकार			
सांस लेने में कष्ट			
ज्वर			
अतिसार			
वमन			
खांसी और सर्दी (श्वसन के रोग)			
पेट फूलना			
मरोड़ और दौरे			
स्तनपान न करना			
अन्य			

क. इनके अतिरिक्त और क्या उपचार करते हैं जैसे दागना आदि? क्यों?

ख. यदि नाभिरज्जु में संक्रमण हो तो आप क्या करेंगी?

८. शिशु को रोगों से बचाने के लिए आयुर्वेदिक बूटियों का उपयोग करते हुए क्या उपचार करते हैं? कौन सी बूटियां? क्यों?

९. किस उम्र में स्तनपान छुड़ाना शुरू करते हैं? मां के दूध के अलावा बच्चे को क्या खुराक देते हैं? किस उम्र में कौन सा खाद्य देते हैं इसकी सूची दें और कारण भी बतायें।

१०. दंतोद्भवन काल में क्या शिकायतें उत्पन्न होती है? उनका क्या उपचार करते हैं? क्यों?

११. बच्चे की मालिश करते हैं क्या? हां /नहीं

(क) यदि हां तो तेल में क्या घटक मिलाते हैं (चूर्ण, औषध, पत्तियां) कितनी देर तक तेल लगाते हैं? किन अंगों पर? क्यों?

(ख) यह काम प्रायः कौन करता है? क्या आंखों में काजल लगाते हैं? उसे बनाते कैसे हैं? क्यों?

(ग) क्या तेल-मालिश के बाद और किसी चीज से भी मालिश करते हैं? हां/नहीं, किस चीज से?

(घ) मालिश की विधि विस्तार से बतायें।

१२ शिशु को नहलाने के लिए कैसे पानी का प्रयोग करते हैं? (सही का निशान लगायें)

ठंडा

गरम

गुनगुना

औषधिकृत

१३. बच्चे के कपड़ों को साफ करने की क्या विधियां हैं?

१४. एक वर्ष से कम उम्र के बच्चों को प्रायः होने वाली बीमारियां क्या हैं? आप किससे इलाज कराती हैं? क्यों?

क्र.सं.	रोग	उपचार किससे	कारण
i.	क्षय		
ii.	टिटनस		
iii.	पोलियो		
iv.	निमोनिया		
v.	कुपोषण		
vi.	रक्ताल्पता		
vii.	सूखा रोग		
viii.	खुजली		
ix.	खसरा		

x.	कुक्कुरखांसी
xi.	अतिसार
xii.	फुन्सियाँ
xiii.	छोटी माता
xiv.	कान के रोग
xv.	मस्तिष्कावरण शोथ
xvi.	ज्वर
xvii.	क्रिमि
xviii.	कोई अन्य

१५.क. बच्चे को किस प्रकार के खिलौने खेलने के लिए देते हैं। ठीक उत्तर पर सही का चिन्ह लगायें।

	खिलौने	वय वर्ग	कारण
i.	मिट्टी		
ii.	लकड़ी		
iii.	प्लास्टिक		
iv.	कांच		
v.	कपड़े		
vi.	बांस		
vii.	कोई अन्य		

ख. बच्चे को किस प्रकार के खिलौने नहीं देने चाहिए? क्यों? (रंग और आकृति का वर्णन करें)

१६. आप कैसे निश्चित करती हैं कि बच्चा अपनी वय के अनुसार प्रगति कर रहा है? कैसे?

३. (ख) प्रसूति के बाद मां की देखभाल से संबंधित प्रश्नावली

१. प्रायः प्रसव के बाद मां की क्या शिकायतें रहती हैं?

क्र.सं.	रोग	उपचार किसका	कारण
i.	ज्वर		
ii.	बदन दर्द		
iii.	चूचुक का फटना		
iv.	अति स्तनपान		
v.	सूजन		
vi.	स्तन में दूध न होना		
vii.	स्तन में घाव		
viii.	कब्ज		
ix.	योनि से अतिशय स्राव		
x.	रक्तस्राव की अति		
xi.	चूचुक का उल्टाव,		
xii.	झुकाव		
xiii.	कोई अन्य		

३. नवजात शिशु को दूध पिलाने वाली मां को कौन सी दवाएं देनी चाहिए? क्यों?

४. प्रसव के बाद कितनी देर तक मां की मालिश की जानी चाहिए? क्यों?

५. स्तन के दूध की गुणवत्ता और परिमाण बढ़ाने के लिए आप क्या करती हैं? दवा और उपचार विधि बतायें।

६.क. किन परिस्थितियों में आप स्तनपान कराने से मना करती हैं? कारण (क्यों)?

ख. स्तन के दूध की जांच की विधि बतायें।

७. दुग्धपान कराने वाली माता का आहार क्या होना चाहिए? उसे विशेष रूप से क्या लेना और क्या नहीं लेना चाहिए? क्यों?

८. यदि मां दुग्धपान कराने में असमर्थ है तो आप बच्चे को कौन सा दूध पिलायेंगी? कैसे? क्यों?

दुग्ध का प्रकार	कारण	कैसे
किसी दूसरी स्त्री का (बोतल, चम्मच, रुई)		
गाय		
बकरी		
कोई अन्य		

९. प्रसव के बाद कितने समय तक मां को एक निश्चित क्रम का आहार लेना चाहिए? क्यों?

१०. प्रसव के बाद पहले पांच दिनों में सुश्रूषाधीन मां को कौन से विशिष्ट आहार दिये जाते हैं? क्यों?

११. लड़का या लड़की में क्या आहार-भेद रखा जाता है? कितने समय तक मां को अभीष्ट निश्चित आहार-क्रम का पालन करना पड़ता है? क्यों?

१२. पहली बार की प्रसूता को कोई विशेष आहार दिया जाता है? हां/नहीं

१३. यदि स्तनपान के बाद बच्चे को उल्टी, दस्त, पेट फूलना या कब्ज रहता है तो मां के आहार में क्या परिवर्तन करते हैं? क्यों?

रोग	मां के आहार में परिवर्तन	कारण
दस्त		
कब्ज उदरशूल		
पेट फूलना		
अन्य		

१५. निम्न के लिए आप क्या विधि निषेध का परामर्श देती हैं? क्यों?

(क) स्तनपान की मुद्रा

(ख) मांग बनाम निर्धारित स्तनपान

(ग) रात में स्तनपान

(घ) स्तन पान के बाद डकार दिलाना

१६. यदि नवजात की मृत्यु हो जाय, तो मां के दूध उतरने को आप कैसे बंद करती हैं? अथवा उसे कैसे निकालती हैं? इसके लिए मां को कौन सी दवाएं देती हैं? क्यों?

मूल्यांकन से जुड़े आचार्य और सर्वेक्षण में शामिल संस्थाएं

जैसा कि हमने प्रथम परिशिष्ट में बताया है, अखिल भारतीय सर्वेक्षण में २६ संस्थाएं और मूल्याकन में २२ आचार्य संपृक्त थे। हम इन आचार्यों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर अपना मार्गदर्शन दिया और साथ ही सर्वेक्षण करने वाली संस्थाओं को भी हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

क. वे आचार्य जिन्होंने सर्वेक्षण प्रतिवेदनों का मूल्यांकन किया

१. वैद्य निर्मला जोशी, पुणे
२. वैद्य किशोर सराफ, अहमद नगर
३. वैद्य बी.वी. साठये, मुंबई
४. वैद्य शैलेश्वरी अम्मा, त्रिवेंद्रम
५. वैद्य मीरा भट्ट, उदयपुर
६. वैद्य रामहर्ष सिंह, वाराणसी
७. वैद्य एस. कोप्पिकर, बंबई
८. वैद्य एन. ए. मूर्ति, मैसूर
९. वैद्य आर.एम. नानल, बंबई
१०. वैद्य वी.एम. नानल, पुणे
११. वैद्य लक्ष्मीनारायण मैती, कलकत्ता
१२. वैद्य के.पी. व्यास, राजस्थान
१३. वैद्य वी.वी. म्हैसकर, बड़ौदा
१४. वैद्य शुभदा वेलंकर, पुणे

१५. वैद्य दुर्गा परांजपे, पुणे

१६. वैद्य विश्वनाथ शर्मा, मद्रास

१७. वैद्य इलाबेन देशपांडे, अहमदाबाद

१८. वैद्य सुधा व्यास, जामनगर

१९. वैद्य वर्षा वालवलेकर, पुणे

२०. वैद्य अनघा शाह, पुणे

२१. वैद्य धनेश एम. देडगे, पुणे

२२. वैद्य स्मिता वाजपेयी, अहमदाबाद

(ख) सर्वेक्षण में सम्मिलित संस्थाएं

१. जनसेवा मंडल, कोरिट रोड, नंदूरबार, धूलिया, महाराष्ट्र-४२५४१२

२. एवीआर फाउंडेशन, आयुर्वेद कालेज, पतंजलिपुरी, तडागम पोस्ट कोयंबटूर-६४११०८

३. स्नेहकुंज, होन्नावर (टी ९) कासरगोड, उत्तर कर्नाटक जिला, कर्नाटक- ५८१३४२

४. हेल्थ ऐंड इंटिग्रेटेड रूरल डेवलपमेंट एजेंसी, मुख्यालय कोटपाड, जिला-कोरापुट, उड़ीसा-५७६३१३

५. विवेकानंद गिरिजन कल्याण केंद्र, बी.आर. हिल्स, जिला - मैसूर, कर्नाटक-५७६३१३

६. प्रयोग, तिल्दा नियोरा, रायपुर, म.प्र.-४९३११४

७. चाइल्ड इन नीड इंस्टिटयूट, पोस्ट आमगाची, वाया जोका, २४ परगना, प. बंगाल-७४३५१२

८. कांप्रिहेंसिव रूरल डेवलपमेंट प्रोग्रैम, सुंदरवन, प. बंगाल

९. लहोर समाजसेवी संस्थान, पो. मदनपुर, वाया खरसिया, जिला, राजगढ़, म.प्र. - ४९६६६१

१०. प्रयोजन संस्थान पाली, पो. बिजोवा, जि. रानी जिल्ला पाली, राजस्थान-३०६६०१

११. सेवा मंडल, कसना, मेघराज, जि. सबरकांठा, गुजरात

१२. सद्गुरु वाटर ऐंड डेवलपमेंट फाउंडेशन, पो.बा:नं ७१, दहोद, पंचमहल-३८९१५१

१३. पेट्रियाटिक ऐंड पीपुल ओरियंटेड साइंस ऐंड टेक्नालाजी फाउंडेशन, नं-२९, iv मेन रोड गांधीनगर, अड्यार, मद्रास-६०००२०

१४. हेल्थ ओ मिलियन प्रोग्राम, समिमुक्कु, कडक्कई (पोस्ट) क्विलोन जिला-केरल

१५. समाज सुधार स्वया देवी संस्थान, सुखी शिवधाम, पो. जुहाला (कटनी) जिला.जबलपुर, मध्य प्रदेश

१६. चेतना, दूसरी मंजिल, ड्राइव-इन सिनेमा बिल्डिंग, थालतेज रोड, अहमदाबद-३८००५४

१७. एकेडमी आफ डेवलपमेंट साइंस, पो-करजत, जिला-रायगढ़, महाराष्ट्र-४१०२०१

१८. विज्ञान शिक्षा केंद्र, तेरही मुआफी ग्राम, तिन्दवारी, पो.- बांदा जि., उ.प्र.-२१०२०१

१९. ग्रामोन्नति संस्थान, महोबा, गांधीनगर, उत्तर प्रदेश - २१०४२७

२०. आवारी गुरुजी, ऐट ऐंड पो.-बोरवाट, ता. पेठ, जिला-नासिक-४२२२०८

२१. अंकुरण, पो. छतरा, जि. हजारीबाग, बिहार-८२५४०१

२२. पी.एफ.सी., तालुक मुखेड, जिला-नांदेड, महाराष्ट्र-४३१७१२

२३. महिला जागृति केंद्र, आइ ई एल गोपिया, जिला-गिरिडीह, बिहार

२४. परंपरागत औषधि संशोधन विकास केंद्र, मालेवाडा, जि. - गडचिरोली महाराष्ट्र

२५. सूर्या, ऐट देवखोप, तालुका पालघर, जिला-ठाणें, महाराष्ट्र

२६. रुचि, शालना, वाया राजगढ़, जिला-सिरमौर, हिमाचल प्रदेश-१७३१०१

संदर्भ सूची

१. इवैल्युएशन ऑफ क्वालिटी आफ मैटरनल ऐंड चाइल्ड हेल्थ ऐंड फैमिली प्लानिंग सर्विसेज ऐट प्राइमरी हेल्थ सेंटर ऐंड सजेस्टेड स्ट्रेटेजीज फॉर देयर इंप्रूवमेंट। इंडियन काउंसिल आफ मेडिकल रिसर्च (नई दिल्ली), १९८७

२. ट्रेडीशनल चाइल्ड रियरिंग प्रैक्टिसेज शुड बी मेंटेंड–एच.बी. प्रधान, जर्नल आफ दि इंस्टिटयूट आफ मेडिसिन ३(१) १९८१, १२७–१३६।

३. मनुस्मृति

४. प्रश्नोपनिषद् १/१३।

५. आयुर्वेदीय प्रसूतितंत्र एवं स्त्री रोग, भाग १, डा. कु. प्रेमवती तिवारी (चौखंबा ओरियंटेलिया, वाराणसी), १९८६

६. क्लिनिकल आब्स्टेट्रिक्स–ए.एल. मुदलियार तथा एम.के. कृष्ण मेनन (ओरियंट लांगमैन, मद्रास) १९७८

७. ट्रेडिशनल चाइल्डबर्थ प्रैक्टिसेज : इंप्लिकेशन्स फॉर ए रुरल एमसीएच प्रोग्रैम–एस. भाटिया, स्टडीज इन फैमिली प्लानिंग १२ (१९८१), ६६–७४

८. रोल आफ इंडिजिनस मिडवाइफ इन फैमिली प्लानिंग प्रोग्रैमस्–डी.एन. कक्कड़, नर्सिंग जर्नल आफ इंडिया, भाग ६३ (१९७२) १४–२६

९. मदर ऐंड चाइल्ड केयर : ऐन इवैलुएशन आफ लोकस्वास्थ्य परंपराज, एलएसपीएसएस १९८९ (विवरण के लिए देखें परिशिष्ट–एक)

१०. ट्रेडीशनल बर्थ अटेंडेंट्स (दाईज) ऐंड रुरल विमेन, देयर कन्सेप्ट्स ऐंड ऐटीट्यूड्स टुवर्डस चाइल्ड हेल्थ इन आंध्र प्रदेश–टी.पी. कृष्ण आदि, इंडियन पीडियाट्रिक्स, भाग २१, जनवरी (१९८४) २९–३४।

११. सोशियो-कल्चरल फैक्टर्स एंड मैलन्यूट्रिशन इन तेलगाना एंड आंध्र प्रदेश - पार्वती के. राव, न्यूट्रिशन सोसायटी आफ इंडिया की कार्यवाही १९६८, ३२-४३१

१२. पीपीएसटी फाउंडेशन, मद्रास द्वारा चिंगलपेट तथा विल्लुपुरम जिलों में १९८८ में कराया गया 'मां एवं बच्चे का स्वास्थ्य', विषयक परंपरागत प्रथाओं का सर्वेक्षण।

१३. ए मैनुअल आफ न्यूट्रिशन, नैशनल इंस्टिट्यूट आफ न्यूट्रिशन, हैदराबाद, १९८२, २२१

१४. व्हेयर देयर इज नो डाक्टर : डेविड वर्नर की ग्रामीण स्वास्थ्य देखभाल विषयक हस्तपुस्तिका, भारत में वितरण के लिए वालंटरी हेल्थ ऐसोसिएशन आफ इंडिया द्वारा संशोधित, १९८०

स्थानीय स्वास्थ्य परंपराएं

एक परिचय

लेखक : ए.वी. बालसुब्रमणियन् तथा वैद्य एम. राधिका

हिंदी रूपांतर : पं. माधवाचार्य एवं डा. नरेंद्र नाथ मेहरोत्रा

लोस्वापसंस महानिबंध प्रथम

हमारे देश में सर्वत्र व्यापक रूप से प्रचलित विविध लोक स्वास्थ्य परंपराओं (स्थानीय स्वास्थ्य परंपराओं) का परिचय कराने की दृष्टि से इस महानिबंध की रचना की गयी है। प्रस्तुत महानिबंध में इन परंपराओं का वर्णन करके उन्हें भारतीय चिकित्सा पद्धतियों (आयुर्वेद, सिद्ध, यूनानी आदि) के दृष्टिकोण से समझने और उनका मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है, जिससे भारतीय चिकित्सा पद्धतियों का वैज्ञानिक आधार समझा जा सके और स्थानीय स्वास्थ्य परंपराओं की प्रासंगिकता और सामर्थ्य को रेखांकित किया जा सके। यह पुस्तक चार अध्यायों और दो परिशिष्टों में संग्रथित हैं (सचित्र १०० पृष्ठ)।

प्रतियां प्राप्त करने के लिए :

पुस्तक का मूल्य रु. ४०/- प्रति रखा गया है और डिमांड ड्राफ्ट या धनादेश रूप में भुगतान 'जीवनीय सोसायटी' के नाम निम्न पते पर भेजकर प्रतियां प्राप्त की जा सकती हैं :-

जीवनीय

ई-III/२४९, सेक्टर एच

अलीगंज, लखनऊ-२२६०२०

बाहर से आने वाले चेकों में बैंक चार्जेस के लिए रु. १०/- अतिरिक्त भेजना होगा। लोस्वापसंस व जीवनीय के सदस्यों के लिए (कृपया इस रियायत के लिए सदस्य संख्या अवश्य लिखें) यह पुस्तक रु. ३५/- के रियायती दर पर उपलब्ध है। यदि आप पुस्तक रजिस्टर्ड डाक द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं तो रु. १०/- अतिरिक्त भेजें। यह महानिबंध लोस्वापसंस द्वारा स्थानीय स्वास्थ्य परंपराओं से संबद्ध विषयों पर आयोजित प्रकाशन- माला की अन्यतम कड़ी है।

आहार एवं पोषण के आयुर्वेदीय सिद्धांत : भाग १

लेखक : ए.वी. बालसुब्रमणियन् तथा वैद्य एम. राधिका

हिंदी रूपातंर : पं. माधवाचार्य व डा. नरेंद्र नाथ मेहरोत्रा

लोस्वापसंस महानिबंध द्वितीय

लोक स्वास्थ्य परंपराओं से संबद्ध विषयों पर लोस्वापसंस द्वारा प्रकाशित की जा रही श्रृंखला की यह दूसरी कड़ी है। इस महानिबंध में आहार और पोषण के आयुर्वेदीय सिद्धांतों का परिचय प्रस्तुत किया गया है जिसकी सहायता से आहार और पोषण के क्षेत्र की लोक स्वास्थ्य परंपराओं में निहित तर्काधार को समझा जा सकता है। यह महानिबंध नौ अध्यायों में विभक्त है। ये नौ अध्याय निम्न क्षेत्रों को समाविष्ट करते हैं :- प्रस्तावना, द्रव्यगुण के आधार, पाचन के आधारभूत सिद्धांत, अग्नि, प्रकृति और ऋतु, आहार विधि, पथ्य और अपथ्य, कतिपय विशिष्ट पदार्थ (इस अध्याय में पानी, शहद, दूध, घी और अन्न का विचार प्रस्तुत है) कतिपय विशिष्ट विषय (विरुद्धाहार, पाकशास्त्र, अन्नवर्ग और मौखिक स्वास्थ्य विज्ञान)। साथ ही तीन परिशिष्ट भी हैं जो परिभाषिक शब्द- संग्रह,रसों पर टिप्पणी और निघंटु तथा गणों से संबंधित हैं।

यह महानिबंध सचित्र (१२५ पृष्ठ) है। इसका मूल्य रु. ५०/- प्रति रखा गया है (लोस्वापसंस व जीवनीय के सदस्यों के लिए रु. ४५/-)। प्रतियों के लिए कृपया धनराशि को धनादेश या डिमांड ड्राफ्ट के रूप में निम्न पते पर भेजें :-

जीवनीय

ई-III/२४९, सेक्टर एच

अलीगंज, लखनऊ-२२६०२०

रजिस्टर्ड में प्राप्त करने के लिए कृपया रु. १०/- तथा बाहर के चेकों के डाक से लिए रु. १०/- जोड़कर भेजें।

जीवनीय

स्वास्थ्य पत्रिका

Jeevaniya, E III/250, Sector N
Aliganj, Lucknow - 226020